[redacted]

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१४३

(तन्त्रशास्त्रविभागे द्वितीयं (२) पुष्पम्)

श्रीमच्छङ्करमुखविनिःसृतं

गायत्रीतन्त्रम्

'तत्त्वदीपिका' हिन्दीव्याख्योपेतम्

[गायत्रीशापोद्धार-गायत्रीकवच-दशमहाविद्यास्तोत्रसहितम्]

व्याख्याकारः

व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि-

आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्री

सम्पादकः

पं० श्रीतारकनाथभट्टाचार्य धर्मशास्त्राचार्यः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६६

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी-१

संस्करण : द्वितीय, सं० २०२६ वि०

मूल्य :

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)

फोन : ३१४५

प्रधान शाखा

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ३०७६

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

143

GĀYATRĪTANTRAM

OF

ŚRĪ ŚAṄKARA

With the

'Tattvadīpikā' Hindi Commentary

By

PT. ŚIVADATTA MIŚRA, ŚĀSTRĪ

Edited by

PT. TĀRAKANĀTHA BHAṬṬĀCĀRYA

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1969

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office

Gopal Mandir Lane,
P. O. Chowkhamba, Post Box 8,
Varanasi-1 (India)
1969
Phone : 3145

Second Edition
1969
Price Rs. ~~3-00~~ 81/-

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 3076

दिव्य प्रकाशन

आचार्य पण्डित श्री राजनारायण शास्त्री

साङ्ख्ययोगविभागाध्यक्ष : वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेदों में गायत्री का सर्वोच्च स्थान है। गायत्री छन्द की गरिमा छन्दःशास्त्र में प्रतिष्ठित है। गायत्री महामन्त्र का प्रभाव एवं स्वरूप भी सर्वातिशायी है। अत एव *'गायत्री च्छन्दसाम् माता, गायन्तं त्रायते यस्मात्तस्माद् गायत्र्युदाहृता'* इत्यादि शास्त्रों के वचन उपलब्ध होते हैं। उपासकों का तो एकमात्र मत है कि गायत्री महामन्त्र की उपासना से निखिल सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं। परन्तु वहीं पर कुछ अधिकारों की व्यवस्था भी है : द्विजाति ही इसकी आराधना में साधिकार हैं, बुद्धितत्त्व ही जीवन का एक मात्र नेता है, जिसकी शुद्धि एवम् सन्मार्ग में नयन ही इस महामन्त्र का परम लक्ष्य है। शुद्धबुद्धि व्यक्ति स्वयम् पवित्र कार्य करने लगता है जिसका परिणाम अन्त तक सुखद होता है। किसी प्रकार की उपासना का तात्पर्य्य बुद्धिसत्त्व पर ही निर्भर करता है। कहा भी है—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्॥

अनेक व्याख्याएँ तथा भाष्य इस महामन्त्र के सम्बन्ध में प्रकाशित हुए। भूतभावन भगवान् शंकर ने इसके महत्त्व को हृदयङ्गम कर इस गायत्री तन्त्र की रचना स्वयं की। इतना उत्तम ग्रन्थ अभी तक इतने विशृङ्खल रूप में कदाचित् उपलब्ध होता था जिससे उपासकों के हृदय में सन्तोष नहीं होता था।

मिश्रमहोदय ने श्लोक-पाठ की विशुद्धि के साथ ही हिन्दी भाष्य की रचना कर इसे *बहुजनहिताय* की विश्वकल्याण भावना को बल दिया है। वस्तुतः इस पुस्तक के द्वारा विज्ञ समाज, उपासक वर्ग तथा समालोचक समाज को बड़ा ही संबल प्राप्त हुआ है। सर्वाधिक साधुवाद मैं इसके हिन्दी व्याख्याकार *श्री शिवदत्त शास्त्री जी* को देना चाहते हैं कि आपने अतीव व्यस्त जीवन में भी ऐसे-ऐसे अनेक ग्रन्थों का उद्धार कर बड़ा ही उपकार किया है।

भगवान् विश्वेश्वर के चरणों में टीकाकार महोदय के निरामय दीर्घायुष्य की प्रार्थना करता हुआ आशान्वित हूँ कि इन महानुभाव के मस्तिष्क एवम् लेखनी से भविष्य में भी अनेक ग्रन्थरत्न सुन्दर तथा दिव्यरूप से प्रकाशित होते रहें।

भवदीय—
राजनारायण शास्त्री

प्राक्कथन

तन्त्रशास्त्र का प्रचार भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। *'तन्त्रं शास्त्रमनुत्तमम्'* कह कर हमारे तन्त्रशास्त्र-मनीषियों ने तन्त्रशास्त्र की सर्वश्रेष्ठता एवं सर्वोपयोगिता सिद्ध की है। उसी का एक प्रधान अङ्गभूत प्रस्तुत पुस्तक भी है। जिसका नाम 'गायत्रीतन्त्र' है। अर्थात् गायत्री-सम्बन्धी विषय जिसमें वर्णित हों, ऐसी गायत्री की पुस्तक।

'वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः', 'गायत्री छन्दसां माता', 'गायत्री सर्वाणि सवनानि वहति'—आदि वेदों में कहे गये वचनों से गायत्री को वेदमाता सिद्ध किया गया है। भगवद्गीता में भगवान् *'गायत्री छन्दसामहम्'* कहे हैं, अर्थात् वेदों में मैं गायत्री हूँ। इन आर्षवचनों से गायत्री की महत्ता कितनी है, यह भली भाँति समझी जा सकती है। सभी मन्त्रों में एक गायत्री मन्त्र ही ऐसा है जिसके जप करने से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि कठिन से कठिन पापों से भी मुक्त हो जाता है, जैसा कि स्मृति तथा पुराण-वचनों से सिद्ध है : *'गायत्रीजपकृद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते।'* (पाराशर-स्मृति)। *'सर्वपापानि नश्यन्ति गायत्रीजपतो नृप।'* (भविष्यपुराण), *'ऐहिका-ऽऽमुष्मिकं सर्वं गायत्रीजपतो नृप।'* (अग्निपुराण), *'ब्रह्महत्यादि पापानि गुरूणि च लघूनि च। नाशयत्यचिरेणैव गायत्रीजापको द्विजः॥'* (पद्मपुराण)। आदि।

विशेषकर ब्राह्मणों के लिए तो गायत्री से बढ़ कर और कोई बल ही नहीं, जिससे वह आत्म-निर्भर हो सके, और इसी के बल पर तो वह *'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः'* बना। वशिष्ठ एवं विश्वामित्र आदि जितने भी महर्षि हुए हैं वे सभी *'धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेज अहो बलम्'* के अनुसार ब्रह्मबल को प्राप्त किये हैं। गायत्री रहित ब्राह्मण का तो जीवन ही व्यर्थ है। यथा—*'वेदाः साङ्गास्तु चत्वारोऽधीताः सवेंऽथ वाङ्मयाः। गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥'* वस्तुतः ब्राह्मण ही क्या प्रस्तुत पुस्तक में तो मानव-मात्र के लिए *'स्मरणात् सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति तत्क्षणात्।'* तथा *'अशुचिर्वा शुचिर्वाऽपि गच्छंस्तिष्ठन् यथा तथा।' गायत्रीं प्रजपेद्धीमान् जपात् पापं निकृन्तति॥ मननात् पापतस्त्राति मननात् स्वर्गमश्नुते। मननान् मोक्षमाप्नोति चतुर्वर्गमयो भवेत्॥* (गाय० त०, प्र० प०, श्लो० १–३)–इत्यादि वाक्य कहकर गायत्री से बढ़कर और कोई साधन ही नहीं बताया है।

प्रस्तुत पुस्तक में उसी भगवती गायत्री का चरित्र-चित्रण एवं माहात्म्य है, जिसको भगवान् आशुतोष ने स्वमुख से प्रश्नोत्तर रूप में भगवती पार्वती से वर्णन किया है।

इसमें पाँच पटल हैं, जिसमें क्रमशः गायत्री का सविस्तर वर्णन है। यथा—१. प्रथम पटल में गायत्री जप का माहात्म्य, ध्यान, विनियोग, गायत्री का स्वरूप, गायत्री मन्त्र तथा उसका अर्थ, ब्राह्मणों के लिए गायत्रीजप की आवश्यकता, दशांश होम का निषेध, त्रिकाल गायत्री ध्यान तथा हंस गायत्री का निरूपण, भूतशुद्धि, प्राणायाम और सन्ध्या शब्द का अर्थ तथा ध्यान है। २. द्वितीय पटल में गायत्री का स्थान, पंचांग सहित गायत्री जप का विधान, गायत्री तत्त्वनिरूपण, प्रकृति शब्द का अर्थ, प्रणव सहित गायत्री जप का विधान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र शब्द का अर्थ है। ३. तृतीय पटल में ब्राह्मण, क्षत्रियादि के लिए प्रणवयुक्त गायत्री जप करने का विचार, हंस शब्द का अर्थ, अनुस्वार, बिन्दु, विसर्ग एवं अनन्य शब्दार्थ, त्वं, अहं आदि शब्द-ज्ञान, रेत, शोणित गायत्री शरीर का निरूपण, उत्तम, मध्यम, अधम ब्राह्मण का लक्षण, प्रकृति शब्द का अर्थ दिया गया है। ४. चतुर्थ पटल में यज्ञोपवीत-प्रक्षालन का विधान तथा यज्ञोपवीत में गाँठ लगाने—आदि का विचार है। ५. पञ्चम पटल में सन्ध्या तथा गायत्री जप का विधान, गायत्री-निन्दक ब्राह्मण, पुराण शब्दार्थ, गायत्री तन्त्र घर में रखना अत्यावश्यक, ब्रह्मचर्य तथा बलिदान विचार, गङ्गास्नान का फल, गायत्री मन्त्र के चारों पाद क्रमशः चारों वेद हैं, बलिदान-माहात्म्य तथा उसके द्वारा राजा सुरथ का चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति, चारों वेदों का ध्यान वर्णित है।

प्रस्तुत पुस्तक की हिन्दी टीका लिखने के लिए 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी' के अधिकारी वर्ग ने मुझसे साग्रह निवेदन किया और उनके कथनानुसार मैंने आवश्यक संशोधन-सम्पादन के साथ इसकी हिन्दी टीका लिखकर उन्हें सौंप दिया। सुन्दर छपाई-सफाई तथा शुद्ध मुद्रण के लिए वे अत्यधिक धन्यवाद के पात्र हैं।

इस कार्य में मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसके लिए नीर-क्षीर-विवेकी तन्त्रशास्त्र-मर्मज्ञ विद्वानों के ऊपर ही छोड़ता हूँ। यद्यपि अनुवाद कार्य में बड़ी सावधानी एवं विवेकपूर्ण बुद्धि के साथ किया हूँ, फिर भी तन्त्रशास्त्र का विषय बड़ा गहन है, कहीं-कदापि स्खलन हो जाना स्वाभाविक है, तदर्थ क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अन्त में मैं जिन जगज्जननी माता जयन्ती की असीम अनुकम्पा से इस कार्य को पूर्ण कर सका हूँ, उन्हीं के पुनीत चरण-कमलों में इसे समर्पित कर अपने को कृतार्थ समझता हूँ।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
वाराणसी
वि० सं० २०२६

—शिवदत्तमिश्र शास्त्री

निवेदनम्

विदितमेव सर्वेषां विदुषां यत् धर्मार्थकाममोक्षेषु चतुर्ष्वपि पुरुषार्थेषु धर्म एव प्रथमः पदार्थः। यतस्तस्मादेव अर्थकामौ सिद्धयतः ततश्च मोक्ष इति।

तदुक्तं व्यासेन—धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते। इति।

तत्र वैदिकेषु बहुलायाससाध्येषु कर्मसु अनेकेषामप्रवृत्त्या अस्मिन्नधर्मप्रचुरे कलिकाले तन्त्रोक्तानां कर्मणामेव श्रेष्ठत्वमुद्घोषयन् देवादिदेवमहादेवः स्वयं श्रीमुखपङ्कजादुक्तवान् महानिर्वाणतन्त्रे—

कलिकल्मषदीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि।
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा॥
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते॥
विनैवागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये।
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः॥
कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः॥

अपि च तत्रैव—

कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः। शस्ताः सर्वेषु कर्मसु जपयज्ञक्रियादिषु॥

एवं तन्त्रोक्तकर्मणां प्राधान्यमवगम्य तेषामेव प्रथमोपादेयतया निरूपणमावश्यकमिति तत्रैव प्रथमः प्रयत्नः समुचित इति कृत्वा अस्मदीयानां गुरुवर्याणामादेशात् प्रवृत्तिरिति।

कलिकातामहानगर्यां रसिकमोहनचट्टोपाध्यायनामकेन विद्वद्वर्येण बङ्गाक्षरमयान्यनेकानि तन्त्राणि संगृहीतानि। तेषु गायत्रीतन्त्रतोऽस्य ग्रन्थस्याद्यन्तः पाठः विशोधितः। अपि च वाराणसेयराजकीयसरस्वतीभवनाख्यपुस्तकालयाध्यक्षाणां परमपूज्यचरणमहामहोपाध्याय पं० नारायणशास्त्रिखिस्तेमहोदयानामादेशात साहाय्येन च तत्रस्थितेभ्यः प्राचीनहस्तलिखितपुस्तकेभ्योऽपि आमूलं शोधितं किन्तु पञ्चमपटलस्थितं तारकाचिह्नितस्थलं कुत्रापि न लब्धम्। यदि केऽपि विद्वांसः मूलग्रन्थसाहाय्येन तत् पूरयितुं शक्नुयुस्तर्हि कृपया आवेद्य उपासकानां महान्तमुपकारं साधयिष्यन्ति।

तन्त्रमिदं गायत्रीशापोद्धारकवचादिना तथा कैवल्यप्राप्तास्मत्-पितृचरणश्रीमत्-स्वामिभैरवानन्दगिरिविरचितैर्दशमहाविद्यास्तोत्रैश्च सनाथीकृतम्। अत्र दृष्टिदोषेण अज्ञानेन वा सीसकाक्षरसंयोजकदोषेण वा सम्भाविताः सहजास्त्रुटीः क्षाम्यन्तु गुणैकपक्षपातिनो भवन्तः, प्रोत्साहयन्तु च मुद्रकं प्रकाशकं च श्रेष्ठिनं श्रीजयकृष्णदासगुप्तमहोदयमिति मदीया अभ्यर्थना।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
वि० सं० २००३

विदुषामनुचरः
तारकनाथभट्टाचार्यः

श्रीमच्छङ्करमुखविनिःसृतं

गायत्रीतन्त्रम्

'तत्त्वदीपिका' हिन्दीव्याख्योपेतम्

श्रीदेव उवाच—

अधुना संप्रवक्ष्यामि गायत्रीं परमाक्षरीम्।
स्मरणात् सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति तत्क्षणात्॥ १॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे देवि, इस समय मैं परमाक्षरी गायत्री का वर्णन करूँगा, जिस गायत्री के स्मरण मात्र से ही मनुष्य उसी क्षण समस्त पापों से मुक्त हो जाता है॥ १॥

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् यथा तथा।
गायत्रीं प्रजपेद्धीमान् जपात् पापं निकृन्तति॥ २॥

बुद्धिमान् मनुष्य, चाहे वह पवित्र हो या अपवित्र सभी अवस्था में एवं मार्ग में जाते हुए तथा खड़े हुए भी गायत्री का जप करे, कारण कि जप से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २॥

मननात् पापतस्त्राति मननात् स्वर्गमश्नुते।
मननान्मोक्षमाप्नोति चतुर्वर्गमयो भवेत्॥ ३॥

इस गायत्री के मनन करने वाले पुरुष की पाप से रक्षा होती है, गायत्री जापक स्वर्गसुख का उपभोग करता है। तथा मोक्ष एवं चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करता है॥ ३॥

रूपादितत्त्वसहितां गायत्रीं परमाक्षरीम्।
चतुर्भुजां शशिकलां जटाजूटसमन्विताम्॥ ४॥

ध्यान—रूपादि तत्त्वों से युक्त, परमाक्षरी गायत्री, चारभुजा वाली, चन्द्रकला को धारण की हुई, जटाजूट से युक्त,॥ ४॥

ऋक्-साम-यजुरासीनां प्रफुल्लपङ्कजेक्षणाम्।
पञ्चाशद्वर्णग्रथितां मालाद्योतितहृत्स्थलाम्॥ ५॥

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद—इन तोनों वेद में आसीन, विकसित कमल के समान दृष्टि वाली, अपने हृदय में पचास वर्णों से गुथी हुई माला से अत्यन्त सुशोभित ॥ ५ ॥

अनेकवर्णनिर्माणकण्ठ-देशविराजिताम् ।
दिव्यगन्धप्रलिप्ताङ्गीं शुक्लवस्त्रपरिच्छदाम् ॥ ६ ॥

तथा अनेक वर्ण के निर्माण करने वाले कण्ठ देश में विराजित, अपने अंग में दिव्यगन्ध लगायी हुई, स्वच्छ एवं श्वेत वस्त्र धारण की हुई, ॥ ६ ॥

शुक्लपद्मसमासीनां शुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीम् ।
ब्रह्मादिदेवतावृन्दैः संस्तुतां नित्यनूतनाम् ॥ ७ ॥

श्वेत कमल पर बैठी हुई, श्वेत उत्तरीय वस्त्र धारण की हुई, सदा नूतन शरीरधारी एवं जिस की स्तुति ब्रह्मा आदि देवता-समूह करते हैं ॥ ७ ॥

एवं ध्यात्वा न्यसेद्वर्णं पठित्वा छन्द उत्तमम् ॥ ८ ॥

ऐसी गायत्री का ध्यान कर, उत्तम छन्द एवं वर्ण (गायत्री वर्ण) को पढ़कर तत्तद्वर्णों से न्यास करे ॥ ८ ॥

ओं अस्या अग्निमुखीगायत्रयाः परं ब्रह्मऋषिः, ऋग्यजुःसामाऽथर्वच्छन्दः, सवितादेवता, परं ब्रह्ममातुर्न्यासे विनियोगः ।

विनियोग—इस अग्निमुखी गायत्री के ऋषि परब्रह्म हैं तथा छन्द इसका ऋक्, यजुः, साम, अथर्व है, सविता देवता है । इस प्रकार इस परब्रह्म मातृस्वरूपा गायत्री न्यास का विनियोग है ।

पादादिमस्तकान्तस्य न्यासं कुर्याद् विशालधीः ।
विना न्यासं जपेद् यस्तु गायत्री निष्फला भवेत् ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि पैर से मस्तकपर्यन्त गायत्री के वर्णों से न्यास करे । जो मनुष्य बिना न्यास किये ही जप करता है, उसका गायत्री मन्त्र का जप करना निष्फल होता है ॥ ९ ॥

विना मुद्रां न्यसेद् यस्तु न्यासो भवति निष्फलः ।
यतिश्च पञ्चमुद्राभिर्न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥ १० ॥

इसी प्रकार जो बिना मुद्रा के गायत्री का न्यास करता है, उसका न्यास निष्फल होता है । अतः संन्यासी को चाहिए कि वह पाँच मुद्रा से न्यास करे ॥ १० ॥

गृही च यत्नतः कुर्यात् त्रिसन्ध्यं तत्त्वमुद्रया ।
कनिष्ठाऽनामिकाङ्गुष्ठा अङ्गुष्ठा तर्जनी तथा ॥ ११ ॥
अङ्गुष्ठमध्यमायुक्ता अङ्गुष्ठानामिका तथा ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयोगात् पञ्चमुद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥

इसी प्रकार प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में तत्त्वमुद्रा से गृहस्थ न्यास करे। कनिष्ठिका अनामिका एवं अंगुष्ठ तथा अंगुष्ठ तर्जनी और अंगुष्ठ मध्यमा तथा अंगुष्ठ अनामिका एवं कनिष्ठिका अंगुष्ठ आदि अंगुलियों के संयोग से पञ्चमुद्रा होती है ॥ ११-१२ ॥

पादादिमस्तकान्तञ्च ओं भूर्भुवः स्वर्न्यसेत् सुधीः ।
सप्तधा विन्यसेद् विद्वान् गायत्रीं क्रमतस्ततः ॥ १३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह 'ओं भूर्भुवः स्वः' इससे पाद (चरण) से मस्तक पर्यन्त न्यास करे । उसके बाद क्रमशः सात प्रकार से विभाग कर न्यास करे ॥ १३ ॥

पादाङ्गुष्ठे न्यसेद्योगी तत्कारं भावतत्परः ।
सकारं चाङ्गुलयोर्मध्ये विकारं जङ्घयोस्तथा ॥ १४ ॥

योगी जन तत् इससे पैर के अँगूठे में न्यास करे । पैर की अँगुलियों के मध्य में 'स' कार से, तथा दोनों जाँघों में 'वि' से न्यास करे ॥ १४ ॥

तुकारं जानुनोर्मध्ये र्वकारं मध्यदेशतः ।
रेकारं गुह्यदेशे च णकारं वृषणे न्यसेत् ॥ १५ ॥

इसी प्रकार जानुओं के मध्य में 'तु' से, मध्य देश में 'र्व' से, गुह्य देश में 'रे' से तथा अण्डकोश में 'ण' कार से ॥ १५ ॥

यंकारं कटिदेशे च भकारं नाभिमण्डले ।
र्गोकारं जठरे न्यस्य देकारं स्तनयोर्न्यसेत् ॥ १६ ॥

इसी प्रकार कटि (कमर) प्रदेश में 'यं' कार से, नाभि में 'भ'कार से, जठर प्रदेश में 'र्गो' वर्ण से तथा स्तन भाग में 'दे' अक्षर से न्यास करे ॥ १६ ॥

वकारं हृदि देशे च स्यकारं कण्ठतो न्यसेत् ।
धीकारं वदने भद्रे मकारं जानुनि न्यसेत् ॥ १७ ॥

इसी प्रकार हृदय में 'व' से, कण्ठ में 'स्य' इस वर्ण से न्यास करे । मुख में 'धी' वर्ण से तथा जानु में 'म' कार से न्यास करे ॥ १७ ॥

हिकारं नासिकाग्रे च धिकारं चक्षुषोर्न्यसेत् ।
योकारं प्रथमं योगी भ्रुवोर्मध्ये च विन्यसेत् ॥ १८ ॥

नासिका के अग्रभाग में 'हि' कार से तथा दोनों नेत्रों में 'धि' इस अक्षर से न्यास करे। इसी प्रकार योगी पहले अपने भौंहों के मध्य में 'यो' इस वर्ण से न्यास करे ॥ १८ ॥

द्वितीयं तच्च विज्ञेयं ललाटे च न संशयः ।
नःकारञ्च मुखे ज्ञेयं प्रकारं दक्षिणामुखम् ॥ १९ ॥

चोकारं पश्चिमे तद्वद् दकारं चोत्तरामुखम् ।
यात्कारं मूर्ध्नि विज्ञेयं सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम् ॥ २० ॥

पुनः—दूसरे 'यो' वर्ण से ललाट में योगी न्यास करे। मुख में 'नः' इस वर्ण से तथा मुख के दाहिनी ओर 'प्र' इस वर्ण से न्यास करे। इसी तरह मुख से पश्चिम भाग में 'चो' इस वर्ण से तथा मुख के उत्तर की ओर 'द' कार से न्यास करे। इस विधि से समस्त अंगों में श्रेष्ठ मस्तक में 'यात्' इस वर्ण से न्यास करे॥ १९-२०॥

तत्कारं चम्पकापीतं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् ।
सकारं चिन्तयेच्छ्यामं विकारं कपिलं तथा ॥ २१ ॥
तुकारं इन्द्रनीलाभं वँकारं वह्निसन्निभम् ।
रेकारं वह्निसङ्काशं णकारमतिनिर्मलम् ॥ २२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, त्रिदेवात्मक 'तत्' वर्ण का चम्पा पुष्प के समान पीला रंग है। इसी प्रकार 'स' इस वर्ण में श्याम रंग का तथा 'वि' अक्षर में कपिल एवं 'तु' इस वर्ण में इन्द्र नील के समान तथा 'वँ' इस वर्ण में अग्नि के सदृश रंग की कल्पना करे तथा ह्नि के रंग के समान 'रे' अक्षर में एवं 'ण' कार में अति निर्मल श्वेत रंग की कल्पना करे॥ २१-२२॥

यंकारं तडिदाकारं भकारं कृष्णमेव च ।
र्गोकारं रक्तवर्णश्च देकारं श्यामलं तथा ॥ २३ ॥
वकारं शुक्लसङ्काशं स्यकारं श्यामलं तथा ।
धीकारं कुन्दपुष्पाभं मकारं शुक्लमेव च ॥ २४ ॥
हिकारं चन्द्रसङ्काशं धिकारं पीतमेव च ।
योकारं तडिदाकारं योकारं धूम्रवर्णकम् ॥ २५ ॥

बिजली के रंग के समान 'यं' इस वर्ण में तथा कृष्ण रंग की कल्पना 'भ' इस वर्ण में करे। इसी प्रकार 'र्गो' इस वर्ण का रंग लाल तथा 'दे' अक्षर का श्याम। इसी तरह 'व' कार का शुक्ल (सफेद) तथा 'स्य' इस वर्ण का श्याम रंग है। कुन्द के पुष्प के समान रंग 'धी' वर्ण का है, तथा 'म' कार का सफेद रंग है। चन्द्रमा के समान रंग 'हि' वर्ण का है और 'धि' इस वर्ण का पीत वर्ण है। पहला 'यो' वर्ण बिजली के रंग वाला तथा दूसरा 'यो' धूम्र वर्ण का है॥ २३–२५॥

अशेषं शोधयेत् पापं वायुबीजं यथा तथा ।
नःकारेन्द्रमुखं प्रोक्तं प्रतप्तकनकप्रभम् ॥ २६ ॥
नःकारस्य समीपेषु बिन्दुद्वयविभूषितम् ।
ऊदूर्ध्वबिन्दू रक्तवर्णमधः श्यामः प्रकीर्त्तितः ॥ २७ ॥

नीलोत्पलदलश्यामं प्रकारं दक्षिणामुखम् ।
सौम्यं गोरोचनापीतं चोकारं पश्चिमामुखम् ॥ २८ ॥
शुक्लशङ्खसमाकारं दकारं चोत्तरामुखम् ।
यात्कारं मूर्ध्नि विज्ञेयमूर्ध्वास्यं ब्रह्ममन्दिरम् ॥ २९ ॥

जिस प्रकार वायु समस्त पदार्थ को पवित्र करता है, उसी प्रकार धूम्र रंगवाला यह 'यो' कार समस्त पापों को शुद्ध करता है। तपे हुए सोने के रंग के समान 'नः' यह जो वर्ण है वह इन्द्र का मुख कहा गया है, और जो दो विन्दु से युक्त 'नः' है उसमें ऊपर वाले विन्दु का रक्त वर्ण तथा नीचे वाले विन्दु का श्याम वर्ण है। नील कमल के समान श्याम रंगवाला 'प्र' यह वर्ण है, वह दक्षिण मुख है। इसी प्रकार गोरोचन के समान सुन्दर पीत रंग वाला चौदह वर्ण है, जो कि पश्चिमाभिमुख है, तथा श्वेत शङ्ख के रंग के समान 'द' कार वर्ण है वह उत्तराभिमुख है। 'यात्' इस वर्ण को मस्तक में जानना चाहिये, यही ऊर्ध्व मुख ब्रह्मदेव का मन्दिर है॥ २६-२९॥

ब्रह्म-विष्णु-शिवादीनामालयं तत्त्वसंयुतम् ।
प्रणवत्रयसंयोगाद् गायत्री त्रिपदा तथा ॥ ३० ॥

और तत्त्वों से युक्त ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि का निवास-स्थान यही है। 'ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः' इन तीन प्रणवों से संबद्ध होने से गायत्री त्रिपदा कही जाती है॥ ३०॥

यथा सन्ध्यात्रयं नित्यं प्राणायामत्रयं तथा ।
त्रयमाचमनं भद्रे यथावर्णगुणत्रयम् ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार त्रिकाल सन्ध्या तथा तीन प्राणायाम होता है, उसी प्रकार आचमन भी तीन होते हैं, जैसे—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीन वर्ण होते हैं॥ ३१॥

प्रणवत्रयसंयुक्तां गायत्रीं त्रिपदां तथा ।
आद्यन्ते प्रणवं दत्त्वा प्रजपेदनिशं द्विजः ॥ ३२ ॥
चतुर्विंशाक्षरी विद्या परतत्त्वविनिर्मिता ।

उसी प्रकार तीन प्रणव से युक्त त्रिपदा गायत्री होती है। परम तत्त्व से बनी हुई चौबीस वर्ण वाली गायत्री का आदि एवं अन्त में प्रणव लगाकर ब्राह्मणों को चाहिए कि वे इस गायत्री का निरन्तर जप करें॥ ३२½॥

तकारात् यात्कारपर्यन्तं शब्दब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ३३ ॥
परस्य ब्रह्मणो माता गायत्री परदेवता ।

तत्सवितु के 'त' से प्रचोदयात् के 'यात्' पर्यन्त शुद्ध ब्रह्मस्वरूपा गायत्री देवी ब्रह्म की माता है ॥ ३३½ ॥

प्रसुप्तभुजगाकारा बिसतन्तुसमाकृतिः ॥ ३४ ॥
पञ्चाशद्वर्णसंयुक्तं गायत्रीनिर्मितं वपुः।
आधारपद्ममध्यस्था विद्युत्पुञ्जप्रदीपिका ॥ ३५ ॥
महापद्मवनमयी महापापविमोचिनी।
महापुण्यमयी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ ३६ ॥
गायत्री पातु वो नित्या ह्यशेषपापनाशिनी ॥ ३६½ ॥

सोये हुए सर्प के आकार वाली एवं कमल के मृणाल के सदृश आकार वाली तथा पचास वर्णों से युक्त इस गायत्री का शरीर निर्मित हुआ है। आधार कमल के मध्य में स्थित तथा विद्युत्-पुंज के समान चमकने वाली महा पद्मवन मयी एवं अनेक पापों को नष्ट करने वाली, महापुण्यरूपा अविनाशी सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपा गायत्री आप सभी का निरन्तर रक्षा करे। ३४-३६½ ॥

गायत्री अजपा विद्या प्रणवं भूर्भुवः स्वरः ॥ ३७ ॥
ततः प्रणवमुद्धृत्य सुमेरुः सेतुरूपकः ॥ ३८ ॥
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

गायत्री ही अजपा विद्या है। तथा 'भूः, भुवः, स्वः,' इन तीन स्थानों में प्रणव लगाना चाहिए, उसके बाद प्रणव का उच्चारण कर गायत्री का जप करे, वही सेतुरूप सुमेरु है। 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ' यह गायत्री मन्त्र है ॥ ३७-३८ ॥

प्रणवं प्रजपेद्धीमान् पापोच्चाटनकर्मणि।
प्रणवत्रयसंयुक्ता ब्राह्मणेषु प्रकीर्त्तिता ॥ ३९ ॥

पापरूप उच्चाटन कर्म में बुद्धिमान् मनुष्य प्रणवयुक्त गायत्री का जप करे। ब्राह्मणों के लिए तीन प्रणवयुक्त गायत्री जप का विधान बताया गया है ॥ ३९ ॥

क्षत्रादौ परमेशानि सर्वत्र प्रणवद्वयम्।
त्रिपदा नाम गायत्री ब्रह्मविद्या पुरातनी ॥ ४० ॥

हे देवि, क्षत्रिय तथा वैश्य को दो प्रणव से युक्त गायत्री का जप करना चाहिए। त्रिपदा नाम की गायत्री ही अत्यन्त प्राचीन ब्रह्मविद्या है ॥ ४० ॥

सगुणाऽपि गुणातीता प्रणवत्रयसंयुता।
अत एव महेशानि त्रिपदा परिकीर्त्तिता ॥ ४१ ॥

वह सगुण होने पर भी गुणातीत है तथा तीन प्रणव से युक्त है। अतएव हे महेश्वरी, उसका 'त्रिपदा' ऐसा नाम पड़ा ॥ ४१ ॥

द्विपदा क्षत्रवैश्येषु प्रणवद्वयसंयुता।
प्रकृष्टनूतनो वर्णो नित्यनूतनविग्रहः ॥ ४२ ॥
अर्द्धमात्रा धृता बिन्दुर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
प्रणवः कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४३ ॥

क्षत्रिय एवं वश्यों को तो दो प्रणव से युक्त द्विपदा गायत्री का जप करना चाहिए। प्रणव शब्द का अर्थ बतला रहे हैं—प्र = अत्यन्त, नव=नवीन अर्थात् नित्य नवीन शरीरधारी, 'ॐ' यही प्रणव है, उसमें आधी मात्रा है तथा बिन्दु रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। इसी से तत्त्वज्ञानी मुनि लोग इस ॐ को प्रणव कहते हैं ॥ ४२-४३ ॥

श्रीदेव उवाच—

गायत्र्याः प्रथमं वर्णं पीतचम्पकसन्निभम्।
अग्निना पूजितं वर्णमाग्नेयं परिकीर्त्तितम् ॥ ४४ ॥

श्री महादेव जी ने कहा कि हे देवी, इस गायत्री का प्रथम वर्ण तकार पीले चम्पा पुष्प के समान रंग वाला है एवं अग्नि के द्वारा पूजित होने से इस वर्ण को 'आग्नेय' वर्ण कहते हैं ॥ ४४ ॥

त्सकारं द्वितीयं भद्रे सं प्रजापतिपूजितम्।
प्राजापत्यं कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४५ ॥

हे भद्रे, दूसरा वर्ण जो 'त्स' है वह प्रजापति-द्वारा पूजित है। इसी लिए तत्त्वज्ञानी मुनि लोग उसे 'प्राजापत्य' कहते हैं ॥ ४५ ॥

तृतीयं कपिलं वर्णं सोमेन परिपूजितम्।
तेन सौम्यं महेशानि कथ्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४६ ॥

गायत्री के तीसरे वर्ण 'वि' का कपिल वर्ण है तथा सोम के द्वारा वह वर्ण पूजित है अतएव हे महेश्वरी, उसे 'सौम्य' कहते हैं ॥ ४६ ॥

इन्द्रनीलसमप्रख्यं चतुर्थं वेदपूजितम्।
ईशेन पूजितं नित्यं ऐशान्यं तेन कथ्यते ॥ ४७ ॥

इन्द्र नील के समान विख्यात चौथा वर्ण 'तुः' वेद द्वारा पूजित अर्थात् ईश से नित्य पूजित है, अतः उसे 'ऐशान्य' वर्ण कहते हैं ॥ ४७ ॥

पञ्चमं परमेशानि ज्वलदग्निसमप्रभम्।
आदित्यपूजितं वर्णमादित्यं तेन कथ्यते ॥ ४८ ॥

हे परमेश्वरी, गायत्री का पाँचवाँ वर्ण प्रज्वलित अग्नि के समान है। वह आदित्य (सूर्य)-द्वारा पूजित है अतः उसे 'आदित्य' वर्ण कहते हैं ॥ ४८ ॥

षष्ठञ्च वह्निसङ्काशं मं बृहस्पतिपूजितम्।
बार्हस्पत्यं कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४९ ॥

बृहस्पति-द्वारा पूजित अग्नि के समान छठे वर्ण 'मं' को तत्त्वज्ञानी मुनि 'बार्हस्पत्य' कहते हैं ॥ ४९ ॥

सप्तमं निर्मलं वर्णमिन्द्रेण परिपूजितम् ।
तेन ऐन्द्रयं महेशानि कथ्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५० ॥

गायत्री के सातवें वर्ण का निर्मल रंग है तथा इन्द्र के द्वारा पूजित है। इसलिए हे महेश्वरी, तत्त्वज्ञानी मुनि लोग उस सातवें वर्ण को 'ऐन्द्रय' वर्ण कहते हैं ॥ ५० ॥

अष्टमं तडिदाकारं पितृदेवेन पूजितम् ।
कथ्यते पैतृदैवत्यं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार बिजली की आकृति वाला आठवाँ वर्ण पितृ देवों-द्वारा पूजित है। अतएव तत्त्वदृष्टि वाले मुनिगण उसे 'पितृदैवत्य' कहते हैं ॥ ५१ ॥

नवमं कृष्णवर्णाभमर्य्यम्णा परिपूजितम् ।
कथ्यते आर्य्यम्णं तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५२ ॥

कृष्ण (काला) रंग वाला गायत्री का नवम वर्ण अर्यमा द्वारा पूजित होने से तत्त्वज्ञानी मुनि-जन उसे 'आर्यमण' कहते हैं ॥ ५२ ॥

दशमं रक्तवर्णाभं सावित्र्या परिपूजितम् ।
कथ्यते तेन सावित्र्यं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५३ ॥

रक्त (लाल) रंग वाला दशम वर्ण सावित्री-द्वारा पूजित होने से तत्त्वज्ञानी मुनि उसे 'सावित्र्य' वर्ण कहते हैं ॥ ५३ ॥

एकादशं श्यामवर्णं त्वष्ट्रा च परिपूजितम् ।
तेन तैः कथ्यते त्वाष्ट्र्यं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५४ ॥

इसी तरह त्वष्टा-द्वारा पूजित श्याम रंग वाले गायत्री के ग्यारहवें वर्ण को मुनि जन 'त्वाष्ट्र्य' वर्ण कहते हैं ॥ ५४ ॥

द्वादशं शुक्लवर्णाभं सदा पूष्णा प्रपूजितम् ।
तेन तैः कथ्यते पौष्ण्यं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५५ ॥

शुद्ध (श्वेत) रंग की कान्ति वाली गायत्री की बारहवें वर्ण की पूषा ने पूजा की है इसीलिए तत्त्वज्ञानी मुनि लोग उसे 'पौष्ण्य' कहते हैं ॥ ५५ ॥

त्रयोदशं श्यामवर्णमिन्द्राग्निपरिपूजितम् ।
कथ्यते तेन मुनिभिरैन्द्राग्नेयं सुलोचने ॥ ५६ ॥

हे सुलोचने, इन्द्र और अग्नि-द्वारा पूजित श्याम रंग वाली गायत्री के तेरहवें वर्ण को मुनि लोग 'ऐन्द्राग्नेय' वर्ण कहते हैं ॥ ५६ ॥

चतुर्दशं शङ्खसङ्काशं वामदेवेन पूजितम् ।
वामदेव्यं कथ्यते तैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५७ ॥

वामदेव से पूजित शंख के समान गायत्री के चौदहवें वर्ण को तात्त्विक दृष्टि मुनिगण 'वामदेव्य' कहते हैं ॥ ५७ ॥

पञ्चदशं शुक्लवर्णं वायुना परिपूजितम् ।
कथ्यते तेन वायव्यं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५८ ॥

वायु-द्वारा पूजित शुक्ल रंग वाले गायत्री के पन्द्रहवें वर्ण को मुनि लोग 'वायव्य' कहते हैं ॥ ५८ ॥

षोडशं चन्द्रसङ्काशं मित्रावरुणपूजितम् ।
अतो वै मैत्रावरुणं कथ्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५९ ॥

इत्थंभूत से चन्द्रमा के समान गायत्री के सोलहवें वर्ण की मित्रावरुण ने पूजा की। इसी से तत्त्वज्ञानी मुनि लोग उसे 'मैत्रावरुण' कहते हैं ॥ ५९ ॥

सप्तदशं पीतसङ्काशमङ्गिरसा प्रपूजितम् ।
कथ्यते आङ्गिरसं तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६० ॥

पीले रंग वाले गायत्री का सत्रहवाँ वर्ण अंगिरा द्वारा पूजित होने से तत्त्ववेत्ता मुनि उसे 'आंगिरस्' कहते हैं ॥ ६० ॥

अष्टादशं तडिद्वर्णं विश्वदेवेन पूजितम् ।
वैश्वदेवं कथ्यतेऽतो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६१ ॥

विश्वदेव-द्वारा पूजित बिजली की आकृति वाला गायत्री के अठारहवें वर्ण को महर्षि लोग 'वैश्वदेव' नाम से पुकारते हैं ॥ ६१ ॥

एकोनविंशं धूम्राभं विष्णुना परिपूजितम् ।
वैष्णवं कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६२ ॥

तथा विष्णु-द्वारा पूजित धूएँ के रंगवाले उन्नीसवें वर्ण को तत्त्ववेत्ता महर्षि 'वैष्णव' इस प्रकार कहते हैं ॥६२॥

प्रतप्तकनकप्रख्यं विंशं वासवपूजितम् ।
कथ्यते वासव्यं तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६३ ॥

इसी तरह वासव-द्वारा पूजित तपाये हुए सुवर्ण के रंगके समान कान्ति वाले बीसवें वर्ण को तत्त्वज्ञानी महर्षिगण 'वासव्य' कहते हैं ॥ ६३ ॥

नीलोत्पलदलश्यामेकविंशं वरानने ।
इष्टभैः पूजितं वर्णमैष्टभ्यं तेन कथ्यते ॥ ६४ ॥

हे सुवदने, इष्ट-द्वारा पूजित नील कमल के समान रंग वाले गायत्री के इक्कीसवें वर्ण को तत्त्वदर्शी महर्षिगण 'ऐष्टभ्य' कहते हैं ॥६४॥

द्वाविंशं रोचनापीतं कुबेरपरिपूजितम् ।
कथ्यते तेन कौबेरं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६५ ॥

कुबेर-द्वारा पूजित गोरोचन के समान रंग वाले गायत्री के बाइसवें वर्ण को तत्त्वज्ञानी मुनि 'कौवेर' कहते हैं ॥ ६५ ॥

त्रयोविंशं शङ्खसङ्काशमश्विनीकुमारपूजितम् ।
आश्विनं कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६६ ॥
चतुर्विंशं रक्तवर्णं ब्रह्मणा परिपूजितम् ।
तेनैव कथ्यते ब्राह्मं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६७ ॥

अश्विनी कुमार-द्वारा पूजित शंख के समान रंग वाले गायत्री के तेइसवें वर्ण को 'आश्विन' तथा ब्रह्मा-द्वारा पूजित रक्त वर्ण वाले चौबीसवें वर्ण को मुनि लोग 'ब्राह्म' इस प्रकार कहते हैं ॥ ६६-६७ ॥

सर्ववेदमयो विद्या गायत्री परदेवता ।
परस्य ब्रह्मणो माता सर्ववेदमयी सदा ॥ ६८ ॥

चारों वेदमय समस्त देवों में श्रेष्ठ विद्यारूप गायत्री एवं सर्ववेदमयी यह परब्रह्म की माता है ॥ ६८ ॥

गायत्र्या पुटितं कृत्वा इष्टमन्त्रं जपेच्छतम् ।
एतज्जपं महेशानि आधाराधेयमुत्तमम् ॥ ६९ ॥

हे महेश्वरी, गायत्री मंत्र से संपुटित कर जो अपने इष्ट मंत्र का सौ बार जप करता है, उस का आधार-आधेय उत्तम होता है। अर्थात् गायत्री मन्त्र का आधार मानकर इष्ट आधेय मन्त्र का जप करने से उत्तम फल प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥

विनाऽऽधारं महेशानि आधेयश्च विना तथा ।
नाधारं सिध्यते भद्रे नाधेयश्च सुसिध्यति ॥ ७० ॥

हे देवि, आधार के बिना आधेय तथा आधेय के बिना आधार दोनों ही नहीं रहते। अर्थात् आधार को आधेय की तथा आधेय को आधार की आवश्यकता रहती ही है ॥ ७० ॥

सर्वेषु विष्णुमन्त्रेषु शैवे शाक्तेषु सुन्दरि ।
सौरे गाणपते भद्रे शस्यते वरवर्णिनि ॥ ७१ ॥

हे सुन्दरि ! विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणपति इन सभी मन्त्रों में गायत्री मन्त्र अति श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥

अञ्जनात् सुलोचनो यस्तु झटिति प्रविशेद् गृहम् ।
न पश्येच्चक्षुषा किञ्चिद् गृहमध्येषु यत् स्थितम् ॥ ७२ ॥

जिस प्रकार नेत्र वाला मनुष्य अपने गृह में अतिशीघ्र चला जाता है और अन्धा मनुष्य घर में स्थापित वस्तुओं को नहीं देखता। उसी प्रकार गायत्री मंत्रयुक्त समस्त मंत्र सिद्ध होते हैं, और गायत्री मंत्ररहित समस्त मंत्र अन्धे के समान व्यर्थ हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

पश्येत् स्थूलान्तरे विद्वान् गृहमध्येषु यत् स्थितम् ।
एवमाधारमाधेयं यः करोति द्विजातिकः ॥ ७३ ॥
अङ्कुरो जायते भद्रे लक्षजापान्न संशयः ।
न च जीवात्मनो भिन्ना गायत्री ब्रह्मरूपिणी ॥ ७४ ॥
गायत्र्या न हि भिन्नः स्याज्जीवात्मा तत्स्वरूपिणी ।
सर्वदा उभयोरेकं नारिकेले यथोदकम् ॥ ७५ ॥

जिस प्रकार अपने गृह में बुद्धिमान् नेत्र रहने पर स्थूल, सूक्ष्म (मोटा-पतला) का विवेचन कर लेता है। उसी प्रकार गायत्री मन्त्र के आधार से कर्मनिष्ठ ब्राह्मण आधेय इष्ट मन्त्र का जप करता है। इस तरह एक लाख जप करने से हे भद्रे, निश्चय ही उसमें से अंकुर निकल आते हैं। यह ब्रह्मरूपा गायत्री जीवात्मा से भिन्न नहीं है और जीवात्मा भी इस गायत्री से भिन्न नहीं है। जिस प्रकार नारियल में जल, नारियल से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार जीवात्मा से गायत्री भिन्न नहीं है ॥ ७३-७५ ॥

द्विजातिः कथ्यते वेदे अत एव हि ब्राह्मणः ।
यथा स्पर्शमणिस्पर्शात् ताम्रोऽपि काञ्चनं सदा ॥ ७६ ॥

जिस प्रकार पारस मणि के स्पर्श मात्र से ताँबा भी सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार गायत्री मंत्र का जप करने वाला ब्राह्मण ही वेद में द्विजाति कहलाता है ॥ ७६ ॥

गायत्रीसहितश्चात्मा द्विजात्मा तेन ईरितः ।
चन्द्रसूर्योपरागे च जप्त्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ७७ ॥

गायत्री-सहित आत्मा ही द्विजात्मा कही जाती है। सूर्य एवं चन्द्रग्रहण में इस मन्त्र के जप करने से ही ब्राह्मण ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ७७ ॥

मन्त्रस्य परमेशानि न च होमादिकं दश ।
कृते होमादिके भद्रे तज्जपं विफलं यथा ॥ ७८ ॥

हे परमेश्वरी, इस गायत्री मन्त्र का दशांश होम नहीं करना चाहिए। दशांश होम करने पर समस्त जप निष्फल हो जाता है ॥ ७८ ॥

जपमात्रे महेशानि अनन्तं तन्मनुं यथा ।
अनन्तस्य महेशानि दशांशं केन जायते ॥ ७९ ॥

हे महेश्वरी, जब इस मन्त्र के जप मात्र से अनन्त फल प्राप्त होता है तब बताओ कि अनन्त का दशांश किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ७९ ॥

गायत्र्या रहितो यस्तु जपपूजादिका वृथा।
कोटयुपलक्षणं भद्रे अनन्तं ग्रहणे भवेत् ॥ ८० ॥

गायत्री मन्त्र से रहित समस्त जप, पूजा आदि व्यर्थ होता है। और इस गायत्री के सहित अन्य मन्त्रों का जप एवं पूजा करने से उसका फल अनन्त कोटि गुण युक्त होता है ॥ ८० ॥

हविराप्राप्तिमात्रेण यथा वह्निः प्रदीप्यते।
आधाराधेयसम्बन्धान्मन्त्रः प्रज्वलितस्तथा ॥ ८१ ॥

जिस प्रकार हवि पदार्थ (घृत, शाकल) अग्नि में पड़ने से अग्नि प्रज्वलित होती है। उसी प्रकार गायत्री के साथ आधार-आधेय मान कर अन्य मन्त्रों का जप करने से मन्त्र प्रज्वलित होते हैं ॥ ८१ ॥

विना हविर्विना काष्ठं कथं वह्निः प्रदीप्यते।
तन्त्रजेनैव गायत्र्या शूद्रोऽपि प्रजपेन्मनुम् ॥ ८२ ॥

हवि एवं काष्ठ (लकड़ी) के बिना अग्नि किस प्रकार प्रज्वलित हो सकती है ? अतः तन्त्रोक्त गायत्री मन्त्र का जप शूद्र को भी करना चाहिए ॥ ८२ ॥

आधाराधेयमेतत् ते कथितञ्चातिभक्तितः।
विना चाधाराधेयं वै प्रजपेद् यदि मूढधीः ॥ ८३ ॥
शतकोटिजपेनैव तस्य विद्या न सिध्यति ॥ ८४ ॥

हे देवि, अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से मैंने आधार-आधेय भाव का निरूपण किया, जो मूर्ख लोग बिना आधाराधेय के इस मन्त्र का जप करते हैं, वे यदि सौ करोड़ भी जप करें तो भी उन्हें सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ८३-८४ ॥

श्रीदेव्युवाच—

श्रुत्वा चागमसन्दर्भमागता सा सुलोचना।
किमुक्तं देव योगेन्द्र हेरम्बाय वदस्व तत् ॥ ८५ ॥
यदि नो कथ्यते देव मम दिव्यं तदाऽस्तु ते ॥ ८६ ॥

श्री देवीजी ने कहा—हे योगीन्द्र देवाधिदेव महादेव, इस प्रकार आगम शब्द का अर्थ श्रवण कर सुन्दर नेत्र वाली पार्वती शंकर जी के समीप आयीं और कहने लगीं कि हे नाथ, इस आगम सन्दर्भ का निरूपण अपने पुत्र हेरम्ब (गणेश) के लिए भी करें। हे देव, यदि आप उसे नहीं कहेंगे तो समझ लीजिए कि आपके लिए मैं मर गयी अर्थात् यदि मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो आप गणेश के लिए भी आगम सन्दर्भ का निरूपण करें ॥ ८५-८६ ॥

श्रीदेव उवाच—

लम्बोदर महाबाहो ! शृणुष्व मधुरं वचः।
इदमागमसन्दर्भं मम वक्त्राद्विनिर्गतम् ॥ ८७ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे महाबाहु, लम्बोदर, मेरे मुख से निकले हुए मधुर वचन युक्त आगम शास्त्र सन्दर्भ को तुम सुनो ॥ ८७ ॥

निर्गतं पार्वतीवक्त्रात् तन्त्रं परमदुर्लभम्।
विलिख्य बहुयत्नेन गच्छ सिद्धाश्रमं सुत ॥ ८८ ॥

हे पुत्र, अपनी माता पार्वती के मुख से निकले हुए अत्यन्त दुर्लभ इस तन्त्र को बड़े ही प्रयत्न से लिख कर तुम अपने सिद्ध आश्रम की ओर जाओ ॥८८॥

यत्र तिष्ठन्ति मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः।
अणिमादिगुणैर्युक्तः शीघ्रं भवतु हे सुत ॥ ८९ ॥

हे पुत्र, जिस सिद्धाश्रम में वेद शास्त्र में पारंगत ऋषिगण निवास करते हैं। उसी स्थान में तुम शीघ्र ही अणिमा आदि अष्टसिद्धि से युक्त हो ॥ ८९ ॥

इत्युक्ते शङ्करे देवे अष्टबाहुरभूत्ततः।
विलिख्य चतुरैर्हस्तैः शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ९० ॥

इस प्रकार शंकर जी के कहने पर गणेश जी के आठ हाथ हो गये। उसके बाद उन्होंने चार हाथों से उस आगम सिद्धि तन्त्र को लिखकर शिवजी को समर्पित किया ॥ ९० ॥

पञ्चाशन्मातृका कन्या तन्त्रादाविरभूत् क्षणात्।
तां दृष्ट्वा तस्य देवस्य जायते लिङ्गवर्द्धनम् ॥ ९१ ॥

उसी क्षण उस तन्त्र से कन्यास्वरूप में पचास मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उनको देख कर शंकर जी का स्वरूप (लिंग) (बाण) बढ़ने लगा ॥ ९१ ॥

विधृत्य लिङ्गं तस्याङ्गं प्रजप्य अणिमामनुम्।
सूक्ष्मत्वं प्रययौ शीघ्रं गणेशस्य निरन्तरम् ॥ ९२ ॥

उस लिंग को धारण कर तथा अणिमादि युक्त आगम सन्दर्भ तन्त्र का जपकर गणेश जी का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म हो गया ॥ ९२ ॥

गच्छ पुत्र महाबाहो तन्त्रमादाय सत्वरम्।
प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं तन्त्रमादाय सत्वरम् ॥ ९३ ॥
सिद्धाश्रमं वनं रम्यं यथेन्द्रस्य च नन्दनम्।
दृष्ट्वा गणेशं ते विप्रा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ ९४ ॥

हे महाबाहुपुत्र, अब तुम इस तन्त्र को लेकर शीघ्र ही सिद्धाश्रम की ओर जाओ। इस प्रकार अपने पिता शङ्कर जी के कहने पर, उसी क्षण शङ्कर जी को प्रणाम कर उस तन्त्र को लेकर गणेश जी ने सिद्धाश्रम की ओर प्रस्थान किया। इन्द्र के नन्दन वन के समान सुन्दर सिद्धाश्रम वन में गणेश जी जब चले गये तब उस स्थान में रहने वाले ब्राह्मणों ने आश्चर्य से विकसित नेत्र-द्वारा एक टक देखते हुए गणेश जी से इस प्रकार कहा ॥ ९३-९४ ॥

विप्रा ऊचुः—

भाग्यादागमनं देव ! कृपयाऽऽगमनं वद ।
इत्युक्त्वा पूजयामास तं देव शिवनन्दनम् ॥ ९५ ॥

ब्राह्मणों ने कहा—हे देव ! यद्यपि आपका आगमन हम लोगों के अत्यन्त सौभाग्य से ही हुआ है तथापि आप अपने आने का कारण बताने की कृपा करें। इस प्रकार कह कर उन्होंने शङ्कर जी के पुत्र गणेश जी का पूजन किया ॥ ९५ ॥

षोडशैरुपचारैश्च गणेशं पूजेयुर्द्विजाः ।
अणिमादिमहामन्त्रैः पूजेयुः शिवनन्दनम् ॥ ९६ ॥

उसके बाद शिव जी के पुत्र गणेश जी का अणिमादि महा मन्त्रों के द्वारा षोडशोपचार से उन ब्राह्मणों ने पूजन किया ॥ ९६ ॥

ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्वा अणिमादिं जपेन्मनुम् ।
सिन्दूरवर्णसंकाशं योगपट्टसमन्वितम् ॥ ९७ ॥
लम्बोदरं महाकायं मुखं करिकरोपमम् ।
अणिमादिगुणैर्युक्तं चाष्टबाहुं त्रिलोचनम् ॥ ९८ ॥
विजयाविधृतं लिङ्गं मोक्षकामाय पूजयेत् ॥ ९९ ॥

सर्व-प्रथम सिन्दूर के रंग के सदृश योगपट्ट से युक्त महाकाय-स्वरूप, लम्बोदर, हाथी के समान मुखवाले, अणिमादि गुणों से युक्त, आठ हाथवाले, तीन नेत्रवाले, विजयरूप लिंग से विभूषित—ऐसे गणेश जी का उन लोगों ने ध्यान किया। उसके बाद उनका पाद्य, अर्घ्य आदि से सत्कार कर मोक्ष की इच्छा से नीचे लिखे हुए आठ मन्त्रों से गणेश जी का पूजन किया ॥ ९७-९९ ॥

ओं अं गणपतये स्वाहा। ओं लं गणपतये स्वाहा। ओं व्यां गणपतये स्वाहा। ओं प्रां गणपतये स्वाहा। ओं मं गणपतये स्वाहा। ओं ईं गणपतये स्वाहा। ओं वं गणपतये स्वाहा। ओं कां गणपतये स्वाहा। ८।

अनेनैव हि मन्त्रेण पूजयेद् गणनायकम् ।
अणिमाद्यष्टमन्त्रैश्च अष्टबाहुं प्रपूजयेत् ॥१००॥

'ॐ अं गणपतये स्वाहा। ॐ लं गणपतये स्वाहा। ॐ व्यां गणपतये स्वाहा। ॐ प्रां गणपतये स्वाहा। ॐ मं गणपतये स्वाहा। ॐ ईं गणपतये स्वाहा। ॐ वं गणपतये स्वाहा ॐ कां गणपतये स्वाहा।' इन अणिमादि आठ मन्त्रों से आठ हाथवाले गणनायक गणेश जी का पूजन करें। तत्पश्चात् नीचे लिखे हुए मन्त्रों से भी गणेशजी का पूजन करें ॥१००॥

ॐ अणिम्ने नमः स्वाहा। लं लघिम्ने नमः स्वाहा। प्रां प्राप्त्यै नमः स्वाहा। प्रां प्राकाम्याय नमः स्वाहा। मं महिम्ने नमः स्वाहा। ईं ईशित्वाय नमः स्वाहा। वं वशित्वाय नमः स्वाहा। कां कामावसायितायै नमः स्वाहा।

एवं संपूज्य विधिवत् सस्त्रीका मुनयो जये ।
भोजयित्वा विधानेन नानामिष्टफलादिभिः ॥ १०१ ॥

उसके बाद 'ॐ अं अणिम्ने नमः स्वाहा। ॐ लं लघिम्ने नमः स्वाहा। ॐ प्रां प्राप्त्यै नमः स्वाहा। ॐ प्रां प्राकाम्याय नमः स्वाहा। ॐ मं महिम्ने नमः स्वाहा। ॐ ईं ईशित्वाय नमः स्वाहा। ॐ वं वशित्वाय नमः स्वाहा। ॐ कां कामावसायितायै नमः स्वाहा।' इत्यादि आठ मन्त्रों से पत्नीसहित मुनिगण अपनी जय की सिद्धि के लिये पूजन करें ॥ १०१ ॥

परमान्नपिष्टकै रम्यैर्दधि-दुग्ध-घृतादिभिः ।
दिव्यगन्धमयैः पुष्पैर्दिव्यगन्धप्रलेपनैः ॥ १०२ ॥
मूषिकं पूजयामास नानामिष्टफलादिभिः ॥ १०३ ॥

तत्पश्चात् विधिविधान एवं श्रद्धा से अनेक प्रकार के मिष्टान्न एवं फल आदि तथा सुन्दर अन्न का चूर्ण, दूध, दही, घी से बने हुए पदार्थों का नैवेद्य लगावे और प्रसाद ग्रहण करे। इसी प्रकार सुगन्धित गन्ध एवं पुष्प-माला आदि धारण कराये। साथ-ही-साथ अनेक प्रकार के व्यंजन आदि से गणेश जी के वाहन मूषक (चूहे) का भी पूजन करे ॥ १०२-१०३ ॥

ओं मं मूषिकाय गणाधिपवाहनाय धर्मराजाय स्वाहा ।
इत्यनेनैव मन्त्रेण मूषिकं पूजयेत् सदा ।
अनेनैव विधानेन तुष्टोऽभूच्छिवनन्दनः ॥ १०४ ॥
हे विप्राश्च सपत्नीकाः किमिच्छथ वरञ्च मे ॥ १०५ ॥

'ॐ मं मूषिकाय गणाधिपवाहनाय धर्मराजाय स्वाहा' इस प्रकार सिद्धाश्रमस्थ ब्राह्मणों के पूजन करने से गणेश जी उन लोगों पर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे सपत्नीक ब्राह्मणो ! हम आप पर अत्यन्त प्रसन्न हैं आप लोग इच्छित वर मुझसे माँग लीजिए ॥ १०४-१०५ ॥

विप्रा ऊचुः—

देहि मे परमं ज्ञानं तन्त्रं यच्छिवभाषितम् ।
एवं भक्ष्याणि द्रव्याणि नित्यं दास्यामि ते विभो ॥१०६॥

ब्राह्मण लोग कहने लगे कि हे विभु, जिस तन्त्र का शिवजी ने निरूपण किया वह तन्त्र आप हम-सभी को प्रदान करने की कृपा करें। यदि आप वह

तन्त्र मुझे देंगे तो हम सभी लोग आप को नित्य अनेक प्रकार के मिष्टान्न आदि प्रदान करते रहेंगें ॥ १०६ ॥

मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा तत् तन्त्रं मुनये ददौ ।
एवं तन्त्राणि सर्वाणि विलिख्य विनिवेदयेत् ॥ १०७ ॥
पूजेयुः प्रत्यहं विप्रा यन्त्रे मूर्त्ति विलिख्य वै ।
सर्वाङ्गसुन्दरं मूर्त्तिमष्टबाहुसमन्वितम् ॥ १०८ ॥
त्रिकोणमध्ये तन्मूर्त्ति हेरम्बयन्त्रनिर्णयम् ।
श्रुत्वा जया-विजया वाक्यं हर्षगद्गदमानसः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार मुनियों के वचन सुन कर गणेशजी ने वह तन्त्र मुनियों को प्रदान किया । और कहा कि इस तन्त्र को लिखकर तथा उस यन्त्र में आठ हाथवाली सर्वांग सुन्दर मेरी मूर्त्ति भी लिखकर ब्राह्मण लोग मेरा प्रतिदिन पूजन करें । त्रिकोण के मध्य में हेरम्ब-गणेश की मूर्ति स्थापित करें । इस प्रकार गणेश जी के वचन सुनकर जया, विजया अत्यन्त हर्षित एवं रोमांचित हुईं ॥१०७-१०९॥

एतत् ते कथिताः सर्वा जयायै विजया तदा ।
पूजितं येन विधिना लिङ्गं तस्माद् द्विजोत्तमः ॥ ११० ॥
तत्सर्वं कथ्यतां देव ! यदि तेऽस्ति दया मयि ॥ १११ ॥

तत्पश्चात् इस तन्त्र का निरूपण जया के लिये गणेशजी ने किया । जया ने विजया से कहा—हे देव ! जिस प्रकार विधि-विधान से उस लिंग का पूजन आपने किया उस विधान का निरूपण यदि आप की मेरे ऊपर कुछ भी कृपा हो, तो उसे कहने की कृपा करें ॥११०-१११॥

देव उवाच—

ओं नमो लिङ्गाय महते अणिमादिगुणैर्युते ।
पाद्यादीनि क्रमाद् दद्यान्मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार उन ब्राह्मणों के वचन सुन कर गणेशजी ने कहा कि अणिमादि गुणों से युक्त 'ॐ नमो लिङ्गाय महते' इस मन्त्र से पाद्य, अर्घ्य आदि षोडशोपचार से अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से पूजन करे ॥११२॥

खर्जूरार्द्धासनं लिङ्गं कन्दर्पज्वरनाशनम् ।
अणिमादिगुणैर्युक्तं ब्रह्मोपेन्द्रादिसेवितम् ॥ ११३ ॥

खजूर के आधे आसन पर स्थित लिंग देव हैं, जो कामज्वर को नाश करने वाले हैं । तथा ब्रह्मा, इन्द्रादि देवगण उनकी निरन्तर सेवा करते हैं, एवं वे अणिमादि गुणों से युक्त हैं ॥११३॥

यथा मन्त्रं प्रवक्ष्यामि जप्त्वा भोगमयो भवेत् ।
मायाबीजं समुद्धृत्य लिङ्गाय तदनन्तरम् ॥ ११४ ॥

इस प्रकार 'ॐ नमो लिङ्गाय महते' इस मन्त्र का जप कर भोग करे । पहले मायाबीज का उद्धार कर, उस के बाद लिङ्गबीज का उद्धार करे ॥११४॥

पुनर्मायां समुद्धृत्य अष्टोत्तरशतं जपेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा श्रृङ्गारे मदनोपमः ॥ ११५ ॥

तत्पश्चात् पुनः मायाबीज का उद्धार कर १०८ बार बीज मन्त्र का जप करे ॥ ११५ ॥

ततः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीमन्त्रं गुणशालिनम् ।
कामबीजं समुद्धृत्य भगरूपिणि पदं ततः ॥ ११६ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त गुणशाली स्त्रीमन्त्र का निरूपण करते हैं । पहले कामबीज का उच्चारण कर बाद में भगरूप बीज का उद्धार करे ॥११६॥

चन्द्रिकाभं गतं वाममर्द्धबिन्दुसमन्वितम् ।
कथितमुभयोर्मन्त्रमुभयोः प्रीतिदायकम् ॥ ११७ ॥

उसके बाद अर्धबिन्दु से युक्त चन्द्रिकाभ मन्त्र का जप करने (अर्थात् रति करने) से स्त्री-पुरुष दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ ११७ ॥

मन्त्रहीने च या क्रीडा सा क्रीडा पशुवत् सदा ।
लिङ्गतत्त्वमविज्ञाय शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ ११८ ॥

जिस प्रकार मन्त्रहीन रति पशुवत् होती है । उसी प्रकार लिङ्गतत्त्व के ज्ञान के बिना शिवलिङ्ग पूजा व्यर्थ होती है ॥ ११८ ॥

यथा तस्य वृथा पूजा गायत्रीरहितस्तथा ।
मनोबुद्धिः पुष्पयुतं तत्पदं शिवपूजने ॥ ११९ ॥
सपदं विलिखेच्छक्तिं वेदित्रयस्ते च पूजकः ।
सपदं विलिखेच्छून्यं (सूर्यं) लिङ्गं मूर्द्धनि यत्नतः ॥ १२० ॥
तदैव शिवलिङ्गस्य ध्यानेनोक्तावयं भवेत् ।
जीवन्यासं तदा देवि निश्चयं नाऽत्र संशयः ॥ १२१ ॥

उसी प्रकार गायत्री-रहित पूजा भी व्यर्थ ही होती है । शिव जी के पूजन में मन-बुद्धि रूप पुण्य युक्त होते हुए पूजक को चाहिए कि वह तीनों वेदी में शक्ति को पहले लिखे पश्चात् शून्य (सूर्य) लिङ्ग को वेदी के मस्तक पर लिखे तभी तो शिवलिङ्ग के ध्यान से हम-सभी युक्त होंगे । तत्पश्चात् हे भद्रे ! जीवन्यास करे ॥ ११९-१२१ ॥

अनेन विधिना भद्रे यः पूजयति शङ्करम् ।
स सम्यक् फलमाप्नोति सर्वपूजाफलं लभेत् ॥ १२२ ॥

हे देवि ! इस प्रकार विधि-विधान से जो साधक शंकर जी का पूजन करता है वही शंकर जी के पूजा का समस्त फल भलीभाँति प्राप्त करता है ॥१२२॥

सशून्यं पूजितं तेन जीवात्मा शुद्धतामियात् ।
ध्यानत्रयं विना देवि निष्फलं शिवपूजनम् ॥ १२३ ॥
ध्यानत्रयं प्रवक्ष्यामि अत्यन्तगोपनं शृणु ॥ १२४ ॥

शून्यसहित लिङ्ग का पूजन करने से जीवात्मा अत्यन्त शुद्ध एवं पवित्र होता है। हे देवि ! इन तीन ध्यान के बिना जो प्राणी शिव जी का पूजन करता है उसका पूजन निष्फल होता है। हे देवि ! वे तीन ध्यान कौन-से हैं उसका वर्णन करता हूँ—अत्यन्त सावधान मन से सुनो ॥ १२३-१२४ ॥

शुक्लकृष्णारुणाभासां चतुर्बाहुधरां पराम् ।
शुक्लाम्बरपरीधानां कटाक्षविशिखोज्ज्वलाम् ॥ १२५ ॥
नानाभरणशोभाढ्यां मङ्गलां मङ्गलप्रदाम् ।
शङ्खेन्दुकुन्दसङ्काशां चित्रांशुकपरिच्छदाम् ॥ १२६ ॥
शरच्चन्द्रप्रसन्नास्यां चित्रवेणीविराजिताम् ।
नानाभरणशोभाढ्यां लसत्कोकनदेक्षणाम् ।
चतुर्बाहुधरां दिव्यां ध्यायेच्छिवस्वरूपिणीम् ॥ १२७ ॥

शुक्ल, कृष्ण तथा अरुण कान्तिवाली, चार हाथ वाली, शुक्ल वस्त्र धारण करने वाली, अग्नि के समान उज्ज्वल कटाक्ष वाली, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित, मङ्गलस्वरूपा एवं मङ्गल प्रदान करने वाली, शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्द पुष्प के समान चित्र-विचित्र वस्त्र धारण करने वाली, शरत्कालीन चन्द्र के समान स्वच्छ एवं प्रसन्न मुख वाली तथा चित्र-विचित्र वेणी से सुशोभित, कोकनद के समान (रक्त) नेत्र वाली, चार भुजा वाली, शिवस्वरूपिणी का ध्यान करे ॥ १२५-१२७ ॥

शरच्चन्द्रप्रतीकाशां कृष्णांशुकपरिच्छदाम् ।
द्विभुजां स्वर्णवर्णाढ्यां लसत्पद्मदलेक्षणाम् ॥ १२८ ॥
ध्यायेज्ज्योत्स्नां महामायामणिमासिद्धिरूपिणीम् ॥ १२९ ॥
अणिमाद्यष्टसिद्धिश्च रजःसत्त्व-तमोगुणाः ।
ज्ञात्वा यः कुरुते देवि श्लोके श्लोके च योजनाम् ॥ १३० ॥
तदा फलमवाप्नोति पुराणस्य च नान्यथा ।
अष्टसिद्धिपरिज्ञानं विना पुस्तकवाचनम् ॥ १३१ ॥
यः करोति महामूर्खः कुक्कुरध्वनिवद्ध्वनिः ।
विना न्यासं महेशानि प्राणायामं विना तथा ॥ १३२ ॥
शून्यं पूजनमात्रेण सर्वं याति पवित्रताम् ।

शरत्कालीन स्वच्छ दिशाओं के समान कृष्ण वस्त्र को धारण करने वाली, दो भुजा वाली, स्वर्ण के समान वर्ण वाली तथा विकसित कमल के समान दृष्टि वाली, अणिमासिद्धिरूपिणी, ज्योत्स्नारूप महामाया का ध्यान करे। हे देवि, जो मनुष्य अणिमादि अष्टसिद्धि एवं रज, तम, सत्त्वगुण के पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर जो देवी की स्तुति करता है वही समस्त फलसिद्धि को प्राप्त करता है। जो महामूर्ख अज्ञानी मनुष्य अणिमादि अष्टसिद्धि के ज्ञान के बिना ही केवल पुस्तक का पाठ करता है, उस का पाठ केवल कुत्ते के भूँकने के समान ही होता है। हे महेश्वरी, केवल अष्टसिद्धि के ज्ञान मात्र से ही न्यास एवं प्राणायाम के बिना भी शून्य का पूजन करने से सभी पवित्र पूर्ण हो जाता है ॥ १२८-१३२ ॥

लिङ्गतत्त्वमविज्ञाय शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ १३३ ॥
सा पूजा मृत्तिकापूजा जीवात्मा अपवित्रता ।
शिवशक्तिमयं लिङ्गं निर्माणसदृशं फलम् ॥ १३४ ॥
मनोबुद्धिमयं लिङ्गं सह दृष्ट्वा भवेद् यदा ।
सदृशं कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ॥ १३५ ॥

जो मनुष्य लिङ्गतत्त्व के ज्ञान के बिना शिवलिङ्ग का पूजन करता है वह पूजा मानो मृत्तिका (मिट्टी) का पूजन होता है, तथा उस पूजा से जीवात्मा अपवित्र हो जाती है। जिस लिङ्ग-निर्माण में शिव और शक्ति दोनों का सादृश्य हो तथा मन एवं बुद्धि का भी सादृश्य हो उसी को तन्त्रशास्त्र में पारङ्गत मुनि लोग सदृश लिङ्ग कहते हैं ॥ १३३-१३५ ॥

ध्यात्वा शिवं महादेवं श्वासं पुष्पे विनिक्षिपेत् ।
तत् पुष्पं परमेशानि शिवाय विनिवेदयेत् ॥ १३६ ॥

हे परमेश्वरी, इस प्रकार महान् देवस्वरूप शिव का ध्यान कर पुष्प में श्वांस छोड़ कर वह पुष्प शिव जी पर चढ़ावे ॥ १३६ ॥

तदैव सहसा जीवः शुद्धो भवति पूजने ।
तदैव सहसा जीवो लोचनस्य च गोचरः ॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्वांस-प्रक्षिप्त पुष्प के चढ़ाते ही जीवात्मा अत्यन्त शुद्ध एवं पवित्र हो जाती है, और उसी समय जीव दृष्टिगोचर होने लगता है अर्थात् नेत्र के सम्मुख जीवात्मा उपस्थित हो जाती है ॥ १३७ ॥

मुकुरेऽपि तथा भद्रे स्थूलदेहनिरीक्षणम् ।
शिवलिङ्गे तथा भद्रे आत्मनैवात्मदर्शनम् ॥ १३८ ॥

हे भद्रे, इतना ही नहीं अपितु जिस प्रकार स्थूलदेह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता

है, उसी प्रकार शिवलिङ्ग में अपनी सूक्ष्म आत्मा का दर्शन स्वयं को होने लगता है ॥ १३८ ॥

घृतपूर्णे ताम्रभाण्डे पलैर्द्वादशनिर्मिते ।
प्रत्येकं पात्रे निःक्षिप्य शिवलिङ्गं समर्चयेत् ॥ १३९ ॥
संपूज्य विधिवद्भक्त्या वाक्यं कृत्वा च पूजने ।
कोटिलिङ्गस्य पूजायाः सम्पूर्णफलमाप्नुयात् ॥ १४० ॥
अनेन विधिना कृत्वा कोटिपूजाफलं लभेत् ॥ १४१ ॥

बारह ताँबे के पात्र में घी भरकर तथा प्रत्येक में एक-एक पल सुवर्ण छोड़कर उस से शिवलिङ्ग का पूजन करे। इस प्रकार बारह ताम्र-कलशों से विधिविधान से तथा अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से पूजन करने से कोटि लिङ्ग-पूजा का फल प्राप्त होता है। इस विधि से पूजन कर कोटि शिवलिङ्ग पूजन का फल प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह प्राप्त करे ॥ १३९-१४१ ॥

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव संसारार्णवतारक ।
यदि न पूजने शक्तो युगभेदक्रमेण च ॥ १४२ ॥
लक्षलिङ्गं समभ्यर्च्य कोटिलिङ्गमथापि वा ।
यदि तस्य फलं व्यर्थं किं भविष्यति मे वद ॥ १४३ ॥

श्री पार्वती ने कहा—हे संसाररूपी समुद्र से पार उतारने वाले देवाधिदेव महादेव, इस विधान से कोई साधक पूजन करने में असमर्थ हो तथा केवल लक्ष एवं कोटि लिङ्ग का पूजन करे तो क्या उस का फल व्यर्थ होता है? इस प्रश्न का उत्तर आप देने की कृपा कीजिए? ॥ १४२-१४३ ॥

श्रीदेव उवाच—

निर्माय द्वादशं लिङ्गं शुद्धस्वर्णेन सुन्दरि ।
तोलकं तोलकं कृत्वा दद्याद्वेदपारगे ॥ १४४ ॥
तदैव कोटिपूजायाः फलमाप्नोति पूजकः ।
निष्फलं जायते सर्वं जपपूजनवाचनम् ॥ १४५ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे सुन्दरि! एक-एक तोला शुद्ध सुवर्ण लेकर उस का बारह शिवलिङ्ग बनाकर शुद्ध वैदिक ब्राह्मणों को प्रदान करे। तभी पूजक को कोटि लिङ्ग-पूजा का फल प्राप्त होता है। इस विधान के बिना सभी जप, पूजा आदि निष्फल होती है ॥ १४४-१४५ ॥

यथा तस्य भवेद् व्यर्थं शिवपूजां विना तथा ।
विफलं जायते सर्वं दिनकृत्यं दिने दिने ॥ १४६ ॥

हे सुन्दरि, जिस प्रकार शिव जी के पूजन के बिना सभी निष्फल होता है उसी प्रकार उस साधक का समस्त शुभाशुभ कृत्य व्यर्थ होता है ॥ १४६ ॥

शिवशक्त्यात्मकं जीवं यः पश्यति स वैष्णवः ।
अनेन विधिनात्मानं यस्तु पश्यति तत्पदे ॥ १४७ ॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
सर्वज्ञानमयः सोऽपि सर्वधर्ममयश्च सः ॥ १४८ ॥

प्रतिदिन जो पुरुष जीव को शिवशक्त्यात्मक स्वरूप से देखता है वह पुरुष तो वैष्णव है। इस प्रकार अपने (आत्मा) में भी जो शिव-शक्त्यात्मक ज्ञान करता है वही समस्त तीर्थों में स्नान किये हुए के समान होता है, तथा वही समस्त यज्ञों में दीक्षित होता है और वही सर्व धर्ममय एवं समस्त ज्ञानमय होता है ॥ १४७-१४८ ॥

अनेन विधिना पूजा जायते परमात्मनः ।
यथा ज्ञानात्मनः पूजा पूजा हि ह्यन्तरात्मनः ॥ १४९ ॥
आत्मनैवात्मनः पूजा प्रथमं शिवपूजने ।
लिङ्गस्य दक्षिणे वामे विलिख्य कुसुमद्वयम् ॥ १५० ॥

जिस प्रकार अन्तरात्मक ज्ञानरूप आत्मा की पूजा ही पूजा कही जाती है, इसी विधि से परमात्मा का पूजन होता है। शिव जी के पूजन में प्रथम आत्मा-द्वारा पूजन होता है। उस लिङ्ग के दाहिनी एवं बायीं ओर दो पुष्प का उल्लेख करे ॥ १४९-१५० ॥

परंब्रह्म स्वयं लिङ्गं भवत्येव न चान्यथा ।
पूजनं शिवषट्कानामनेन विधिना भवेत् ॥ १५१ ॥

उसी समय वह लिङ्ग स्वयं परब्रह्म स्वरूप हो जाता है। इस विधि के बिना वह लिङ्ग परब्रह्म नहीं होता। इस प्रकार छह शिव-लिङ्गों का पूजन करे ॥१५१॥

आत्मान्तरात्मा परमज्ञानात्मा षट्शिवास्तथा ।
संपूज्य प्रथमं भद्रे ततोऽष्टौ संप्रपूजयेत् ।
नित्यकर्मफलं प्राप्य काम्यकर्मफलं लभेत् ॥ १५२ ॥

हे भद्रे! आत्म-अन्तरात्म, परम ज्ञानात्मरूप षट् शिवलिङ्गों का पहले पूजन कर उसके बाद अष्ट शिवलिङ्ग का पूजन करे। इस प्रकार करने से साधक नित्य कर्मफल को प्राप्त कर काम्य (मनोभिलषित) फल को प्राप्त करता है ॥ १५२ ॥

श्रीदेव्युवाच—

शव इत्यक्षरे ब्रह्मवाचकः प्रेतनिर्णयः ।
मङ्गला सरिता ज्योत्स्ना यदा भवति सुन्दरः ॥ १५३ ॥
शिव इत्यक्षरो ब्रह्मवाचको ब्रह्मनिर्णयः ।
तदा शवो महादेवः शिवोऽभूत् सहसा प्रभो ॥ १५४ ॥
कृपया कथयेशान वर्णद्वयविनिर्णयम् ।
अज्ञात्वा वर्णद्वयं देव पूजने शवपूजनम् ॥ १५५ ॥

श्री देवी (पार्वती) ने कहा—हे प्रभु, जब ब्रह्मवाचक शव अक्षर प्रेतवाचक का बोधक होता है, और वह शव मङ्गला, सरिता, ज्योत्स्नावाचक होता है-वही ब्रह्मवाचक ब्रह्म का निर्णय करने वाला शव शब्द उसी समय शिव तथा महादेव वाचक होता है। हे ईश्वर ! इन दोनों वर्णविपर्यय का निरूपण करने की कृपा करें। अर्थात् शव में 'इ' की मात्रा जोड़ देने से शिव हो जाता है। हे देव, जो लोग इन दो वर्णों का ज्ञान नहीं रखते वे शिव के स्थान पर शव का पूजन करते हैं ॥ १५३-१५५ ॥

श्रीदेव उवाच—

कलौ चतुर्गुणं कृत्वा यदि न पूजयेच्छिवम् ।
कोटिपूजाफलं हन्ति किं तस्य काम्यकर्मणि ॥ १५६ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे महेश्वरी, कलियुग में जो चतुर्गुण (चौगुना) करके शिव का पूजन नहीं करता, उसका कोटि पूजा का फल नष्ट हो जाता है, तो भला उसका मनोरथ किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ? ॥ १५६ ॥

ज्ञात्वा यः परमेशानि वर्णद्वयविनिर्णयम् ।
अन्यथा चाऽभवत् पूजा प्रेतवत् फलदायिनी ॥ १५७ ॥

हे परमेश्वरि, जो वर्णद्वय का ज्ञानयुक्त पूजन करता है उसी के समस्त मनोरथ सिद्ध होते हैं। अन्यथा उसकी वह पूजा प्रेत के समान फलप्रदायिनी होती है ॥ १५७ ॥

शिवरूपो महादेवः शक्त्या युक्तो भवेद् यदि ।
तदा प्रभवितुं शक्तः ईश्वरः कार्यकारकः ॥ १५८ ॥

जब इकाररूप शक्ति से युक्त होता है तभी शिव-महादेवस्वरूप होते हैं। तथा शक्त ईश्वर कार्य कारक इत्यादि अर्थ के वाचक होते हैं ॥ १५८ ॥

शङ्खेन्दुकुन्दसङ्काशं शिवङ्कान्तमितीरितम् ।
दलिताञ्जनसङ्काशं संविशान्तमितीरितम् ॥ १५९ ॥

शिव ही तो कान्तस्वरूप होता है और उनका यश शंख, चन्द्रमा तथा कुन्द पुष्प आदि के सदृश श्वेत होता हुआ दिग्-दिगन्त में व्याप्त होता है और शव का यश-कीर्ति दलित अंजन (अत्यन्त कृष्ण) वर्ण का होता है ॥ १५९ ॥

पञ्चाशन्मातृकामध्ये तिस्रो वर्णा नगात्मजे ।
विषमा च हरो वर्णो मङ्गला च तथैव च ॥ १६० ॥

हे नगराजपुत्री, पचास मातृका के बीच तीन वर्ण विषमा, हर तथा मङ्गल इस नाम के हैं ॥ १६० ॥

कोणविंशतिसंयुक्ता मङ्गला च हरस्तथा ।
दशाष्टकोणसंयुक्ता विषमा कमलेक्षणा ॥ १६१ ॥

बीस कोण से युक्त मङ्गला और हर संज्ञक वर्ण है तथा अट्ठारह कोण से युक्त विषमा नाम का वर्ण है ॥ १६१ ॥

विशेषं तत्र वक्ष्यामि तालव्यस्य च साधनम् ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री बिन्दुत्रयविनिर्मिता ॥ १६२ ॥

अब उसमें तालव्य का विशेष साधन बतलाते हैं। तीन बिन्दु से युक्त वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री इस नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १६२ ॥

वामासु संगता रौद्री रौद्री ज्येष्ठासु संगता ।
पञ्चभूतमयी नित्या मङ्गला षट्शिवात्मिका ॥ १६३ ॥

रौद्री वामा में सङ्गत हैं, ज्येष्ठा में रौद्री सङ्गत है, वह पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश पञ्चभूत में रहती है। उसी प्रकार षट्शिवात्मिका मङ्गला नाम की है ॥ १६३ ॥

वामासु संस्थितो ब्रह्मा विष्णुर्ज्येष्ठासु संस्थितः ।
रौद्रीषु संस्थितो रुद्रो गुणत्रयविनिर्णयः ॥ १६४ ॥

वामा में ब्रह्मा, ज्येष्ठा में विष्णु, रौद्री में त्रिगुणात्मक रुद्र निवास करते हैं ॥ १६४ ॥

वामाज्येष्ठासन्धिशून्ये ईश्वरो गुणवर्जितः ।
रौद्रीज्येष्ठासन्धिशून्ये त्रिगुणश्च सदाशिवः ॥ १६५ ॥

निर्गुण ईश्वर वामा एवं ज्येष्ठा सन्धि के शून्य में तथा सगुण ईश्वर रौद्री एवं ज्येष्ठा सन्धि के शून्य में निवास करता है ॥ १६५ ॥

यः शिवः परमब्रह्म पञ्चशून्ये विजृम्भते ।
चतुष्कोणात्मके ऊर्द्ध्वे आत्मनः स्थितिनिर्णयः ॥ १६६ ॥

पञ्च शून्य में सुशोभित परमब्रह्म शिव चतुष्कोण के ऊर्ध्वभाग में आत्मा स्थितिरूप से वर्तमान है ॥ १६६ ॥

अधोभागे चतुष्कोणे निवासश्चान्तरात्मनः ।
दक्षभागे चोर्द्ध्वकोणे परमात्मा वसेत् सदा ॥ १६७ ॥

उस चतुष्कोण के नीचे के भाग में अन्तरात्मा का निवास है। और उस चतुष्कोण के दाहिनी ओर तथा ऊर्ध्वकोण में परमात्मा का सदा निवास है॥ १६७॥

अधोभागे चतुष्कोणे ज्ञानात्मा निवसेद् ध्रुवम्।
ऊर्द्ध्वरेखाद्वये देवि चतुष्कोणे मनःस्थितिः॥ १६८॥

उस चतुष्कोण के नीचे के भाग में ज्ञानात्मा का निवास स्थान है। हे देवी, चतुष्कोण की दोनों ऊर्ध्व रेखा में मन का निवास है॥ १६८॥

सर्ववेत्तृ सर्वगामि मनः सर्वत्र कथ्यते।
एकादशेन्द्रियाणाञ्च पञ्चभूतेषु संस्थितिः॥ १६९॥

मन सर्ववेत्ता है तथा सर्वत्र अबाध गति वाला है। और यह मन ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चभूत इन सभी में निवास करता है॥ १६९॥

पञ्चभूतेषु भूतानां स्थितिरेव न संशयः।
विष्णुबिन्दुगता ज्योत्स्ना यदा भवति सुन्दरि॥ १७०॥
तदासि चञ्चलापाङ्गि कथ्यते तन्त्रदर्शिभिः।
ईशित्वं च शिवः शक्तिर्मङ्गलान्ते भवेद् यदि॥ १७१॥
शिवेति कथ्यते नाम मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः।
वामा रजोगुणा नित्या तरुणादित्यसन्निभा॥ १७२॥
ज्येष्ठा सत्त्वगुणा नित्या शरच्चन्द्रप्रदीपिका।
दलिताञ्जनसङ्काशा रौद्री तमोगुणा स्मृता॥ १७३॥

यह मन प्राणिमात्र के पञ्चभूतों में रहता है। हे सुन्दरि, जिस समय ज्योत्स्ना विष्णुबिन्दु मध्यगत होती है, उस समय हे चंचल कटाक्षवाली, तन्त्रवेत्ता लोग उसे 'तदासि' कहते हैं। उसी प्रकार मङ्गला के अन्त में ईशित्वरूप शिवशक्ति को तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ लोग 'शिव' इस नाम से कहते हैं। मध्याह्न के सूर्य के समान कान्तिमति वामा रजोगुण से युक्त, तथा शरत्कालीन चन्द्र की कान्ति के समान ज्येष्ठा सत्त्वगुण से युक्त एवं घनघोर अंजन के समान कृष्ण वर्ण वाली रौद्री तमोगुण से युक्त है॥ १७०-१७३॥

विषमा च हरे चैव भावनात् सिद्धिरुत्तमा।
जायन्ते नात्र सन्देहो गिरिजे नगनन्दिनि॥ १७४॥

हे गिरिजे पर्वतराजपुत्रि, विषमा शक्ति की भावना से, जो कि रुद्र से सम्बन्धित है उसको भावना से निस्सन्देह उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है॥ १७४॥

शिवशब्दपरिज्ञानं विना यः पूजयेच्छिवम्।
तस्य छुरिकया जिह्वाकर्तनं पापमोचनम्॥ १७५॥

जो मनुष्य शिव का पूजन शिव शब्द के ज्ञान के विना करता है, उसकी जीभ छूरी से काट लेने पर भी किसी प्रकार का पाप नहीं लगता॥ १७५॥

विष्णुर्बिन्दुगता ज्योत्स्ना अणिमा सत्त्वरूपिणी।
मङ्गला कामवशीसिद्धिरीशित्वशिवरूपिणी॥ १७६॥
लघिमाप्राप्तिसिद्धिषु प्राकाम्या महिमा तथा।
वशित्वं च तथा सिद्धिः पञ्चशून्ये विजृम्भते॥ १७७॥

विष्णु बिन्दु के मध्यगत ज्योत्स्ना अणिमा सात्त्विक स्वरूपा है। मङ्गला कामवशी सिद्धि प्रदान करने वाली है, तथा शिवरूपिणी ईशित्वशक्ति स्वरूपा लघिमा प्राप्ति आदि सिद्धियों में प्राकाम्य, महिमा, वशित्व आदि सिद्धि पञ्चशून्य में स्थित है॥ १७६-१७७॥

ज्ञात्वा च परमेशानि वर्णद्वयस्य निर्णयम्।
तदा फलमवाप्नोति पार्थिवस्य प्रपूजने॥ १७८॥

हे परमेश्वरी, पार्थिवपूजन का फल दोनों वर्णों के निर्णय को जान कर ही मनुष्य प्राप्त करता है॥ १७८॥

एतद्रहस्यं परमं सर्वपूजासु सम्मतम्।
एतत् तत्त्वमविज्ञाय जपपूजां करोति च।
यथा तस्य वृथा पूजा गायत्रीरहितस्तथा॥ १७९॥

सभी देवकी पूजा में सम्मत इस परम रहस्य के तत्त्व को नहीं जानकर जो जप एवं पूजा करता है, उस की पूजा गायत्री मन्त्ररहित पूजा के समान निष्फल हो जाती है॥ १७९॥

देव्युवाच—

हंसं निरञ्जनं नित्यं निर्विकारमकृत्रिमम्।
हंसस्थानं महादेव कथयस्व दयानिधे॥ १८०॥

श्री देवी ने कहा—हे दयानिधि महादेव, निरञ्जन, नित्य, निर्विकार, अकृत्रिम, हंस का स्वरूप तथा उस के स्थान का निरूपण करने की कृपा कीजिए?॥ १८०॥

श्रीदेव उवाच—

अधोबिन्दुषु हंकारं संकारं ऊर्द्ध्वबिन्दुषु।
विभाव्य पूजयेदात्मा दशवर्णं महामनुम्॥ १८१॥

भगवान् शंकर ने कहा—हे देवि, अधोबिन्दु में हंकार का तथा ऊर्ध्वबिन्दु में संकार का विचार कर दश वर्ण महामनुस्वरूप आत्मा का पूजन करे॥१८१॥

इति ते कथितमन्यद्धेदं परमगोपनम् ।
अनेन विधिना देवि वक्षलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ १८२ ॥

हे देवि ! इस प्रकार हमने तुम से कहा और भी बहुत से अत्यन्त गुप्त भेद कहे । इस विधि से वक्ष एवं लिङ्ग का पूजन करे ॥ १८२ ॥

युगभेदक्रमे भद्रे कलौ चतुर्गुणं भवेत् ।
त्रेतायां द्विगुणञ्चैव द्वापरे त्रिगुणं तथा ॥ १८३ ॥
संपूज्य विधिवल्लिङ्गं परब्रह्ममयो भवेत् ।
अतःपरं प्रवक्ष्यामि गायत्र्यक्षरचिन्तनम् ॥ १८४ ॥

हे भद्रे, युगभेद से कलियुग में चौगुना, त्रेता में दुगुना तथा द्वापर में तिगुना करते हुए विधि-विधान से लिङ्ग का पूजन करे । इस प्रकार करने से वह मनुष्य परब्रह्ममय हो जाता है । अब इस के बाद गायत्री के अक्षर का चिन्तन (विचार) करते हैं ॥ १८३-१८४ ॥

भूर्लोकं च तु भूःकारो भुवर्लोको भुवस्तथा ।
स्वःकारः सुरलोकं च गायत्र्या आसनं स्मृतम् ॥ १८५ ॥

पृथ्वीलोक में भूःरूप गायत्री का तथा भुवर्लोक में भुवःरूप गायत्री का एवं सुरलोक में स्वःरूप गायत्री का आसन है ॥१८५॥

परस्य ब्रह्मणो रूपं तकारं त्रिगुणात्मकम् ।
त्सकारं रसतत्त्वं च विकारो गन्ध एव च ।
एवं तत्त्वं विजानीयात् गायत्रीषु विनिर्णयम् ॥ १८६ ॥

'तत्'वाला तकार त्रिगुणात्मक परब्रह्म का तथा 'त्स' यह वर्ण रस-तत्त्व का एवं 'वि' यह वर्ण गन्ध का तत्त्व है । इसी प्रकार गायत्री के समस्त वर्णों के तत्त्वों का निर्णय समझना चाहिए ॥ १८६ ॥

देव्युवाच—

योकारश्च तथाकाशो योकारो नासिका तथा ।
तुकारस्य तु मे देव सदर्थं कृपया वद ? ॥ १८७ ॥

श्री देवी ने कहा—हे देव, इस गायत्री मन्त्र के योकार का जिसका अर्थ आकाश एवं नासिका है तथा तुकार का अर्थ बतलाने की कृपा कीजिए ? ॥१८७॥

श्रीदेव उवाच—

त्रयोदशस्वरः शक्तिर्विसर्गान्तः स्वरोपरि ।
त्रयोदशस्वराक्रान्तं वायुबीजं जपेत् ततः ॥ १८८ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे देवि, उसके बाद तेरह स्वरों के ऊपर शक्तिरूप विसर्गान्ति तक एवं तेरह स्वरों से आक्रान्त वायु बीज का जप करे ॥ १८८ ॥

वायुबीजं जपेद् विद्वान् पापोच्चाटनकर्मणि ।
यो यो वर्णद्वयं भद्रे पापस्योच्चाटनं भवेत् ॥ १८९ ॥

हे कल्याणि, पापरूप उच्चाटन कर्म में बुद्धिमान् मनुष्य वायुबीज का जप करे । इन दोनों वर्णों से ही पाप का उच्चाटन होता है ॥ १८९ ॥

वकारस्य च सन्दर्भं पूर्वोक्तं वीरवन्दिते ।
पञ्चशीर्षा च गायत्री षट्कुक्षा पञ्चदेवता ॥ १९० ॥

हे वीरवन्दिते, पूर्व में कहे हुए वकार के सन्दर्भ से युक्त षट्कुक्ष एवं पञ्चदेवता युक्त पञ्चशीर्ष नाम की गायत्री कही जाती है ॥ १९० ॥

सांख्यायनसगोत्रा च षट्पदा परिकीर्तिता ।
अनेनैव हि गायत्र्या आसम्यक् कथ्यते यतः ॥ १९१ ॥

सांख्यायनस गोत्र वाली गायत्री षट्पदा कही जाती है । इसी षट्-पदा गायत्री से गायत्री का 'आसम्यक्' होता है अर्थात् यही गायत्री है ॥१९१॥

अत आचमनः ख्यातः कथ्यते तन्त्रदर्शिभिः ।
गायत्र्याचमनं कृत्वा गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः ॥ १९२ ॥

तन्त्र के तत्त्ववेत्ताओं ने इसी षट्पदा गायत्री से गायत्री आचमन कहा है । अतः साधक इस गायत्री से आचमन कर गायत्री का जप करे ॥ १९२ ॥

सम्यक् प्रकारभावेन नवशक्तिमयं जलम् ।
करस्थं मन्त्रमुच्चार्य्य निरीक्ष्य शिवरूपिणम् ॥ १९३ ॥

हे देवि, पूर्वोक्त आसम्यक् प्रकार से नव शक्तिरूप जल को हाथ में लेकर शिवरूपी मन्त्र का उच्चारण कर साधक जप करे ॥ १९३ ॥

आचमनाद् यान्ति पापानि प्राप्नोति पुण्यमक्षयम् ।
समन्त्रं सशिवं तोयमात्मतत्त्वमितीरितम् ॥ १९४ ॥

आचमनरूप गायत्री से समस्त पाप नष्ट होते हैं एवं वह मनुष्य अक्षय पुण्य को प्राप्त करता है । और वह शिवमन्त्र युक्त जल ही 'आत्मतत्त्व' कहा जाता है ॥ १९४ ॥

गायत्रीपानमात्रेण शब्दब्रह्ममयो भवेत् ।
विना पानं हि गायत्र्या गायत्रीजपनिष्फलम् ॥ १९५ ॥

गायत्री से अभिमन्त्रित जल के पान मात्र से ही साधक शब्दब्रह्ममय हो जाता है । बिना गायत्री के आचमन के गायत्री जप निष्फल होता है ॥ १९५ ॥

पूरकैकेन पानं स्यात् द्वितीयं कुम्भकैस्तथा ।
तृतीयं रेचकैः पानं गायत्रीपाननिर्णयम् ॥ १९६ ॥

पहला आचमन पूरक से तथा द्वितीय कुम्भक से एवं तृतीय रेचक से पान करे। इस प्रकार पूरक, कुम्भक, रेचक से पान करे, यही गायत्री के पान का निर्णय है ॥ १९६ ॥

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैस्तदेवाचमनं भवेत्।
जपेत् सूर्यमुखो भूत्वा नास्ति दिङ्नियमः क्वचित् ॥ १९७ ॥

शिवतत्त्वरूप आत्मविद्या से गायत्री के आचमन का विधान बताया गया है। इस प्रकार आचमन कर, सूर्य की ओर मुख कर गायत्री का जप करे। इसमें पूर्व, या पश्चिम आदि दिशा का विचार नहीं है ॥ १९७ ॥

गायत्रीं प्रजपेन्नित्यं त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः।
अशौचे तु महेशानि गायत्रीं मनसा स्मरेत् ॥ १९८ ॥

अतः साधक को चाहिए कि वह मन में किसी प्रकार का भी सन्देह न करते हुए त्रिकाल (अर्थात् प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल) में गायत्री का जप करे। हे महेश्वरी, यदि अशौचावस्था हो तो उस समय मन से गायत्री का स्मरण करे ॥ १९८ ॥

गायत्री बहुरूपा च त्रिसन्ध्यं ध्यानमेव च।
क्षत्रादौ यदि देवेन्द्र शस्यते प्रणवद्वयम्।
तन्मे कथय योगेन्द्र प्रणवस्थाननिर्णयम् ॥ १९९ ॥

यह गायत्री अनेक प्रकार की है और तीनों काल में इसका ध्यान भी किया जाता है, यह तो आपने भली-भाँति समझा दिया। अब हे देवाधिदेव महादेव, क्षत्रिय आदिकों के लिए जो दो प्रणव से युक्त गायत्री के जप का विधान प्रशस्त है, उस प्रणव के स्थान-निर्णय का वर्णन करने की कृपा कीजिए? ॥ १९९ ॥

देव उवाच—

यात्कारान्तेषु भूरादौ प्रणवं क्षत्र-वैश्ययोः।
प्रणवैः पुटितं कृत्वा प्रतिवर्णं पृथक् पृथक् ॥ २०० ॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा सर्वपापक्षयो भवेत्।
प्रणवाद्या व्याहृतिः स्यादजपाभूर्भुवस्वरः ॥ २०१ ॥
आद्यन्ते प्रणवं दत्त्वा गायत्रीं प्रजपेद् द्विजः।
चतुर्वर्गप्रदा विद्या चतुर्विद्यात्मिका सदा ॥ २०२ ॥

श्री महादेवजी ने कहा कि हे देवि, 'भू' से लेकर 'यात्' पर्यन्त गायत्री मन्त्र में क्षत्रिय एवं वैश्यों को भू से पूर्व प्रणवयुक्त गायत्री का जप करना चाहिए। इसी प्रकार गायत्री के प्रत्येक वर्ण को ॐ (प्रणव) से सम्पुटित (अर्थात् गायत्री के प्रति वर्ण में पहले और बाद में ॐकार लगा कर मध्य में गायत्री के वर्ण को रखे)

जप करने से साधक के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इसको अष्टोत्तरशत (१०८ बार) जप करना चाहिए। भूः, भुवः, स्वः के पूर्व प्रणव—ॐ लगाने से ही वह अजपा गायत्री होती है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को देनेवाली चतुर्विद्यात्मिका गायत्री का जप आदि एवं अन्त में प्रणव से युक्त कर ब्राह्मणों को सर्वदा करना चाहिए ॥ २००-२०२ ॥

वामा धर्मप्रदा बिन्दुर्ज्येष्ठा अर्थप्रदा तथा।
रौद्री कामप्रदा बिन्दुः श्रीबिन्दुर्मोक्षदायिनी ॥ २०३ ॥

महेशवदनं बिन्दुः श्रीविष्णोर्हृदयं तथा।
समनुःपरमाराध्या संयुक्ता ब्रह्मबिन्दुना ॥ २०४ ॥

वामा बिन्दु धर्मप्रदान करने वाली, ज्येष्ठा बिन्दु अर्थ (धन) प्रदान करनेवाली एवं रौद्री बिन्दु समस्त काम को देनेवाली तथा श्री बिन्दु मोक्ष को प्रदान करनेवाली है। वह बिन्दु ही महेश का मुख एवं श्रीविष्णु का हृदयरूप ब्रह्मस्वरूप मनु के सहित परम आराध्या गायत्री है ॥ २०३-२०४ ॥

मोक्षदाता च श्रीबिन्दुः चतुर्बिन्दुर्विनिर्णयम्।
प्रातरादित्यसङ्काशां चतुर्बाहुसमन्विताम् ॥ २०५ ॥

हंसासनसमासीनाम् ऋग्वेदे समुदाहृताम्।
मध्याह्ने चन्द्रसङ्काशां गरुडासनसंस्थिताम् ॥ २०६ ॥
चतुर्भुजां कृष्णवर्णां विकचोत्पलधारिणीम्।
यजुर्वेदोदितां ध्यात्वा प्रजपेत् परमाक्षरीम् ॥ २०७ ॥

श्री बिन्दु मोक्ष को प्रदान करने वाली है। इस प्रकार चारों बिन्दुओं का निर्णय किया गया है। हे देवि, अब त्रिकाल गायत्री के ध्यान का निरूपण करते हैं—प्रातःकाल सूर्य के समान, चतुर्भुज हंस पर आसीन ऋग्वेदोक्त गायत्री के प्रातःकाल का वर्णन किया गया। उसी प्रकार चन्द्रमा के सदृश गरुड़ पर आसीन, चतुर्भुज, कृष्ण वर्णवाली, विकसित कमल को धारण की हुई यजुर्वेदोक्त गायत्री का मध्याह्न में ध्यान कर जप करे ॥ २०५-२०७ ॥

वृषासनसमासीनां चतुर्बाहुसमन्विताम्।
सायाह्ने वरदां घोरां प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनाम् ॥ २०८ ॥

बैल पर आसीन, चतुर्भुज, वर प्रदान करने वाली, विकट घोररूपा, प्रतिमुख में तीन-तीन नेत्र वाली गायत्री का ध्यान सायंकाल में करते हुए साधक को चाहिए कि वह उसका जप करे ॥ २०८ ॥

पञ्चाशन्मातृकावर्णां पञ्चाशत्-स्थानसन्धिषु।
विन्यसेद् यत्नतो यस्मात् तस्मान्न्यासेति कथ्यते ॥ २०९ ॥

पचास स्थान सन्धि में पचास मातृका वर्ण का विन्यास करे। इसी विन्यास को न्यास कहते हैं ॥ २०९ ॥

शोधनं पञ्चभूतानामिन्द्रियाणाञ्च शोधनम्।
क्रियते यत्नतो यस्माद् भूतशुद्धिः प्रगीयते ॥ २१० ॥

पञ्चभूतों के शोधन तथा इन्द्रियों के शोधन को यत्नपूर्वक करने को ही भूतशुद्धि कहते हैं ॥ २१० ॥

ईडया पूरयेद् वायुं शक्तिभिः षोडशैः स्वरैः।
ककारादिशिवैर्वर्णैः कुम्भकं कुण्डलीमुखे ॥ २११ ॥
यस्मादुत्पद्यते वायुस्तत्रैव वायुधारणम्।
रेचके च शिवार्द्धैन सन्त्यजेत् पिङ्गलापथे ॥ २१२ ॥
विश्वासात् प्राणदेवस्य प्राणायामेति कथ्यते।
शिवशक्तिमयो जीवस्तदैव सहसा भवेत् ॥ २१३ ॥

सोलह स्वरों की शक्ति से ईडा के द्वारा वायु को पूरित करे। इसी प्रकार शिवसंज्ञक ककारादि वर्णों से कुण्डली के मुख में कुम्भ के द्वारा वायु को पूरित करता हुआ जहाँ से वायु उत्पन्न होता है वहीं वायु को धारण करे। उसी-प्रकार शिवसंज्ञक ककारादि पचीस वर्णों से पिङ्गला के मार्ग में रेचक-द्वारा वायु को परित्याग करे। इस प्रकार प्राणदेव के विश्वास को ही प्राणायाम कहते हैं। उसी समय जीव एकाएकी (स्वतः) शिवशक्तिमय हो जाता है ॥ २११-२१३ ॥

वर्णभेदमविज्ञाय यदि सन्ध्यामुपास्महे।
वृथा भवति सा सन्ध्या न सन्ध्या फलमाप्नुयात् ॥ २१४ ॥

इस प्रकार वर्णभेद को नहीं जान कर जो सन्ध्या करता है उसकी सन्ध्या निष्फल और व्यर्थ होती है ॥ २१४ ॥

वर्णानां चिन्तनं ध्यानं सम्यक् पापप्रणाशनम्।
त्रिसन्ध्यं कुरुते यस्मात् तस्मात् सन्ध्येति कथ्यते ॥ २१५ ॥

भली भाँति वर्णों का चिन्तन एवं ध्यान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तथा तीनों सन्धिकाल में सन्ध्या की जाती है, इसी से इसे 'सन्ध्या' कहते हैं ॥ २१५ ॥

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं गीयते मननाद् यतः।
मननात् त्राति षट्चक्रं गायत्री तेन कीर्तिता ॥ २१६ ॥

मूल से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त का जिसके मनन से ज्ञान होता है, उस मनन से जो रक्षा करे उसे षट्चक्रस्वरूपा गायत्री कहते हैं ॥ २१६ ॥

गायत्र्या रहितो विप्रो घोराधाणि व्यजायत।
यस्य भूपस्य हत्यायां संग्रामं मृगयां विना ॥ २१७ ॥
जायते अधमा बुद्धिर्नरव्याघ्रः स एव हि।
अन्ते स परमेशानि व्याघ्रशूकरयोनिषु ॥ २१८ ॥
जायते नात्र सन्देहो मम वाक्यं सुनिश्चितम्।
भुक्त्वा च विविधान् मांसान् विष्ठाश्च विविधास्तथा ॥ २१९ ॥

गायत्री मन्त्र से रहित ब्राह्मण शूकर योनिमें उत्पन्न होता है। जिस राजा की संग्राम में वीरों के सम्मुख हत्या (युद्ध) करने की उत्कण्ठा नहीं होती, किन्तु शिकार को ही इच्छा होती हैं अर्थात् शिकार को ही वे संग्राम-विजय कहते हैं, ऐसी अधम बुद्धिवाले राजाओं को नरव्याघ्र कहते हैं। हे महेश्वर, ऐसे नरव्याघ्र राजागण अन्त में निस्सन्देह व्याघ्र एवं शूकरयोनि में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि मेरा कथन कभी मिथ्या नहीं होता और वे व्याघ्रशूकर योनि प्राप्त नरव्याघ्र अनेक कष्टों का उपभोग करते हुए मांस, विष्ठा आदि घृणित पदार्थों का उपभोग करते हैं ॥ २१७-२१९ ॥

हत्याञ्च ब्राह्मणादीनां कृत्वा पापेषु मज्जति।
निष्कृतिर्नास्ति तस्यापि तस्मात् पापात् कदाचन ॥ २२० ॥

वे ब्राह्मण आदिकों की हत्या कर उस पाप से जन्म-जन्मान्तर में अनेक कष्ट उठाते रहते हैं। उस पाप का प्रतीकार अर्थात् उस पाप से मुक्त होने का कोई भी उपाय नहीं है ॥ २२० ॥

नरव्याघ्रस्य देशे वै योजनाभ्यन्तरे स्थिताः।
ब्राह्मणाः कृतचाण्डाला गायत्रीरहिता यथा ॥ २२१ ॥

यदि कोई ब्राह्मण उस नरव्याघ्र के देश में एवं उस देश से यदि योजन-भर दूर भी रहता है, तो वह गायत्री-रहित ब्राह्मण के समान चाण्डाल होता है ॥ २२१ ॥

अन्ते च ब्राह्मणास्तं वै व्याघ्रशूकरयोनिषु।
जायन्ते नाऽत्र सन्देहः किं तेषां धर्मकर्मणि ॥ २२२ ॥

अन्त में वे ब्राह्मण लोग भी निःसन्देह व्याघ्र, शूकर योनि को प्राप्त होते हैं। और उनके सभी धर्मादि कार्य व्यर्थ होते हैं ॥ २२२ ॥

नरव्याघ्रस्य यो विप्रः शान्तिस्वस्त्ययनं चरेत्।
ते विप्राः कृतचाण्डालाः प्राप्नुयुस्तेऽपि तद्गतिम् ॥ २२३ ॥

उस नरव्याघ्र का पुरोहित यदि राजा के लिए स्वस्त्ययन करता है तो वह भी उसी नरव्याघ्र की गति को प्राप्त करता है ॥ २२३ ॥

किन्त्वस्य ब्रह्मजापेन सन्ध्यायां किं प्रयोजनम् ।
सर्वास्तेषां वृथा देवि कृतचाण्डालवत् क्रिया ॥ २२४ ॥

तथा वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं रहता अपितु चाण्डाल बन जाता है और उसका विचार इस प्रकार हो जाता है कि गायत्री जप एवं सन्ध्या आदि करना सब व्यर्थ है। हे देवि, उसकी सभी क्रियाएँ चाण्डाल की क्रिया के समान व्यर्थ हो जाती हैं ॥ २२४ ॥

पुराणानुयायिनं गीतं श्रुत्वा शूद्रमुखाद् द्विजः ।
तत्क्षणाद् याति शूद्रत्वं शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥ २२५ ॥

यदि ब्राह्मण शूद्र से इस गायत्री के गीत का श्रवण करता है, तो वह ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व का परित्याग कर शूद्र योनि को प्राप्त करता है, और शूद्र इस गायत्री के मनन करने से चाण्डाल योनि को प्राप्त होता है ॥ २५५ ॥

आगमं परमं तन्त्रं पञ्चाशन्मातृकाक्षरम् ।
पञ्चाशन्मातृकाव्याख्यां यो जानाति द्विजोत्तमः ॥ २२६ ॥

पञ्चाशन्मातृका से युक्त यह गायत्री परम आगम तन्त्ररूप है । जो ब्राह्मण इस पञ्चाशत् मातृका की व्याख्या को भलीभाँति जानता है वही तो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण है ।। २२६ ॥

आचार्यः स च विज्ञेयः सर्वतन्त्रेषु निर्णयः ।
एतत्तत्त्वमविज्ञाय आचार्यः स कथं भवेत् ॥ २२७ ॥

जो समस्त तन्त्रों में पूर्ण ज्ञान वाला हो वही आचार्य कहा जाता है । और जिस को इन सभी तन्त्रों का ज्ञान नहीं है वह आचार्य किस प्रकार हो सकता है ॥ २२७ ॥

एतत्तत्त्वमविज्ञाय यथा शूद्रत्वमर्हति ।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव शूद्रतां व्रजेत् ॥ २२८ ॥

इस गायत्री के तत्त्व को नहीं जानने वाला ब्राह्मण उसी प्रकार शूद्र के समान होता है, जिस प्रकार गायत्री रहित ब्राह्मण ॥ २२८ ॥

सन्ध्याध्यानं प्रवक्ष्यामि सावधानेन संशृणु ।
विना ध्यानं महेशानि न सन्ध्याफलमाप्नुयात् ॥ २२९ ॥

हे महेश्वरी, अब मैं सन्ध्या के ध्यान का वर्णन करता हूँ, उसे सावधानपूर्वक सुनो । सन्ध्या के ध्यान के बिना जो सन्ध्या करता है, उसकी सन्ध्या व्यर्थ होती है ॥ २२९ ॥

नासाग्रे लोचनं न्यस्य ध्यायेद् ब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
प्रातरादित्यसङ्काशां मध्याह्ने शङ्खसन्निभाम् ॥ २३० ॥

नासिका के अग्रभाग में नेत्र को स्थिर कर ब्रह्मस्वरूपा गायत्री का ध्यान करे । प्रातःकाल सूर्य के समान, मध्याह्न में शंख के समान, ॥ २३० ॥

सायाह्ने मरकतभासां चतुर्बाहुसमन्विताम् ।
पट्टाम्बरपरीधानां शङ्खकङ्कणमण्डिताम् ॥ २३१ ॥

सायंकाल मरकत मणि की कान्ति के समान, चार हाथ वाली, रेशमी वस्त्र धारण की हुई, कलाई में शंख के कंकण को धारण की हुई ॥२३१॥

मुक्ताहारलतोपेतां कुटिलालकभूषिताम् ।
कटाक्षविशिखोपेतां समुन्नतपयोधराम् ॥ २३२ ॥

तथा मोती की माला से सुशोभित, कुटिल बालों से सुसज्जित, तीक्ष्ण कटाक्ष वाली, उन्नत स्तन वाली ॥ २३२ ॥

शरदिन्दु प्रसन्नास्यां विचित्रकबरीयुताम् ।
दिव्यगन्धप्रलिप्ताङ्गीं दिव्यमाल्यपरिष्कृताम् ॥ २३३ ॥

एवं शरत्कालीन चन्द्र के समान प्रसन्न मुख वाली, चित्र-विचित्र वस्त्र धारण की हुई, अपने शरीर को दिव्य गन्ध से सुशोभित करती हुई एवं दिव्य पारिजात आदि पुष्पों की माला से विभूषित, ॥ २३३ ॥

दाडिमीबीजसदृशदशनद्युतिसूज्ज्वलाम् ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्तामञ्जनाश्रित-लोचनाम् ॥ ३३४ ॥

दाडिम के बीज (अनार) के समान स्वच्छ दन्त से युक्त, सिन्दूर के तिलक से सुशोभित, आँखों में कज्जल लगायी हुई, ॥ २३४ ॥

तनुदीर्घाङ्गुलीभासन्नख-चन्द्र-विराजिताम् ।
ब्रह्म-विष्णु-स्तुतां देवीं रुद्रादिपरिवन्दिताम् ॥ २३५ ॥

अपनी छोटी अँगुली के नखों की कान्ति से चन्द्रमा के समान सुशोभित, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि श्रेष्ठ देवताओं से सुपूजित, ॥ २३५ ॥

षट्चक्रसंस्थितां दिव्यां परमानन्दरूपिणीम् ।
एवं ध्यात्वा प्रसन्नात्मा सन्ध्यां कुर्यात् फलाप्तये ॥ २२६ ॥

इत्यागमसन्दर्भे ज्ञानदर्शने देवदेवीसंवादे गायत्रीतन्त्रस्य प्रथमः परिच्छेदो ब्राह्मणपटलः ॥ १ ॥

षट्चक्र में निवास करने वाली, परमानन्दस्वरूपा गायत्री को ध्यान करके साधक को चाहिए कि वह सन्ध्या करे । इस प्रकार सन्ध्या करने से ही फल की प्राप्ति होती है ॥ २३६ ॥

इस प्रकार पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रिकृत 'तत्त्वदीपिका' टीका में देव-देवी संवाद रूप आगम सन्दर्भ ज्ञानदर्शन ग्रन्थ में गायत्रीतन्त्र का ब्राह्मण पटलनामक प्रथम परिच्छेद समाप्त ॥ १ ॥

—:०:—

द्वितीय-पटलः

श्रीदेव उवाच—

भूःकारश्च तु भूर्लोको भुवर्लोको भुवस्तथा ।
स्वःकारः सुरलोकश्च गायत्र्याः स्थाननिर्णयम् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी ने कहा कि हे देवि, भूः, भुवः, स्वः इनमें भू का भूलोक, भुवः का भुवर्लोक तथा स्वः का सुरलोक इस प्रकार गायत्री का स्थान है ॥ १ ॥

इच्छाशक्तिश्च भूःकारः क्रियाशक्तिर्भुवस्तथा ।
स्वःकारो ज्ञानशक्तिश्च भूर्भुवःस्वःस्वरूपकः ॥ २ ॥

भूः, भुवः, स्वः इनमें भूः इच्छाशक्तिरूप, भुवः क्रियाशक्तिरूप तथा स्वः ज्ञानशक्तिरूप है ॥ २ ॥

परत्रयात्मकं भद्रे वर्णत्रयमिदं सदा ।
मूलपद्मश्च भूर्लोको विशुद्धञ्च भुवस्तथा ।
सुरलोकः सहस्रारो गायत्रीस्थाननिर्णयम् ॥ ३ ॥

हे भद्रे, भूः, भुवः, स्वः ये तीन वर्ण परब्रह्मात्मक है । भूर्लोक कमल का मूल स्थान है और भुवर्लोक उस कमल का विशुद्ध स्थान है तथा स्वर्लोक (सुरलोक) सहस्रपत्र कमल में स्थित है । इस प्रकार गायत्री के स्थान का निर्णय किया ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच—

नित्यं जपति चात्मीयं जीवात्मा ब्राह्मणः प्रभो ।
कथमावाहनं तस्याः समर्पणमथापि वा ॥ ४ ॥
विसर्जनं कथं तस्याः कृपया कथय प्रभो ।
गायत्री या महादेव सैव स्याद् ब्राह्मणः स्वयम् ॥ ५ ॥

श्री देवी ने कहा कि हे प्रभो, जीवात्मा जिस पर ब्रह्मरूपा गायत्री का नित्य जप करता है उस का आवाहन, समर्पण तथा विसर्जन किस प्रकार होता है ? कृपया इस को बतलाने की कृपा कीजिए । वही गायत्री ब्रह्मस्वरूपा है ॥ ४-५ ॥

तस्या विसर्जने विप्रस्तत्क्षणात् शूद्रतां व्रजेत् ।
रूप्याद्यात्मकजीवात्मा गायत्रीतत्त्वमेव तत् ॥ ६ ॥
अतोऽत्र कथ्यते आत्मा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
गायत्र्यास्तुल्यमाचारं नित्यं जीवस्य चात्मनः ॥ ७ ॥

उस ब्रह्मरूपा गायत्री के विसर्जन से ब्राह्मण उसी क्षण शूद्र बन जाता है । रूप्यकस्वरूप जीवात्मा ही गायत्री तत्त्व है । इसी लिये तो ज्ञानी मुनियों ने उसे ब्रह्मा को आत्मा कहा है । गायत्रीतुल्य आचार ही जीव की नित्य आत्मा है ॥ ६-७ ॥

कथ्यते तेन चात्मीयमात्मानस्तत्त्वदर्शिभिः ।
महेश्वरमुखोद्भूता विष्णोर्हृदयसम्भवा ॥ ८ ॥

इसी लिये तत्त्वज्ञानी लोग उसे अपनी आत्मा कहते हैं । वह महेश्वर के मुख से निकली है, और विष्णु के हृदय से उत्पन्न हुई है ॥ ८ ॥

आत्मन्यवस्थितिस्तस्याः कथं तस्या विसर्जनम् ।
गायत्र्या सह योगेन आत्मा जीवोऽपि ब्राह्मणः ॥ ९ ॥

हे प्रभो, जब वह आत्मा में अवस्थित है तब उस का विसर्जन किस प्रकार किया जा सकता है । गायत्री के साथ सम्बन्धित होने से जीव भी आत्मरूप बन जाता है ॥ ९ ॥

तस्या विसर्जनं देव यदि न दीयते द्विजैः ।
अङ्गहीना तदा सन्ध्या न सन्ध्याफलमाप्नुयात् ॥ १० ॥

यदि ब्राह्मण लोग उसका विसर्जन नहीं करते, तो उस समय सन्ध्या अङ्ग-हीन हो जाती है और वह सन्ध्या फलवती नहीं होती ॥ १० ॥

आवाहनं यथा अङ्गध्यानञ्च स्मरणं यथा ।
तथा चाङ्गं महादेव समर्पणविसर्जनम् ॥ ११ ॥

जिस प्रकार आवाहन, अङ्गध्यान और स्मरण ये मन्त्र के प्रधान अङ्ग हैं उसी प्रकार समर्पण एवं विसर्जन भी अङ्ग हैं ॥ ११ ॥

पञ्चाङ्गं सर्वविद्यायाः सर्वशास्त्रे प्रतिष्ठिता ।
पञ्चाङ्गोपासिता विद्या गायत्री ब्रह्मपूजिता ॥ १२ ॥

इस प्रकार सभी शास्त्रों में समस्त विद्या के पञ्चांग का निरूपण किया गया है । पञ्चाङ्ग से उपासित गायत्री ब्रह्मपूजित गायत्री कही जाती है ॥ १२ ॥

पञ्चाङ्गोपासनेनैव गायत्रीं न जपेद् यदि ।
दिनकृत्यं भवेत्तस्य शूद्रवद् वृषभध्वज ॥ १३ ॥

यदि पञ्चाङ्ग उपासना से रहित गायत्री का जप किया जाता है तो हे वृषभध्वज, उस ब्राह्मण का उस दिन का समस्त कृत्य नष्ट हो जाता है और वह ब्राह्मण शूद्र बन जाता है ॥ १३ ॥

आवाहनं यत्र यत्र तत्र तत्र विसर्जनम् ।
यदि न विसर्जनं तस्या ध्यानं तस्या भवेद् वृथा ॥ १४ ॥

जायते नात्र सन्देहो महेशसूत्रसम्मतम् ।
त्वमेव संशयच्छेत्ता संशयं छिन्धि मे प्रभो ॥ १५ ॥

हे देव, जहाँ आवाहन का विधान है वहाँ उसके विसर्जन का भी विधान है। यदि उसका विसर्जन न किया जाय तो उसका ध्यान ही व्यर्थ हो जाता है। इसमें किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं है। अतः आप ही इस मेरे संशय को नष्ट करने में समर्थ हैं। इसलिए हे प्रभो, आप मेरे इस सन्देह का निवृत्त करने की कृपा कीजिए ॥ १४-१५ ॥

श्रीदेव उवाच—

यस्मादागमनं तस्यास्तत्रैव गमनं प्रिये ।
यत्र तिष्ठति गायत्री तत्रैव ह्यात्मनः स्थितिः ॥ १६ ॥

श्री महादेवजी ने कहा—हे प्रिये, जिसका आगमन (आवाहन) होता है उसका गमन (विसर्जन) भी निश्चित होता है। जहाँ गायत्री का निवास है वहीं आत्मा की भी स्थिति है ॥ १६ ॥

यथा विष्णुस्तथा चात्मा गायत्री सहिता तथा ।
यथाऽऽत्मा च तथा रुद्र ह्यात्मा ब्रह्मसमन्विता ॥ १७ ॥

जिस प्रकार विष्णु हैं उसी प्रकार आत्मा-सहित गायत्री है, और जिस प्रकार आत्मा है उसी प्रकार रुद्र हैं, वह आत्मा ब्रह्म से सम्बन्धित है ॥ १७ ॥

ब्राह्मणानां त्रयो नित्यं प्रणवं भूर्भुवस्वरः ।
प्रजपेद् यदि विप्रात्मा गायत्र्या फलमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

अतः ब्राह्मणों को चाहिए कि वे प्रणवयुक्त भूर्भुवः, स्वः इसका नित्य जप करें। इस प्रकार जप करने से ही वे गायत्री के जप का फल प्राप्त करते हैं ॥ १८ ॥

स्त्री चैव पुरुषस्याङ्गं स्त्रिया अङ्गं पुमान् सदा ।
अजपासहिता ह्यात्मा स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः ॥ १९ ॥

स्त्री पुरुष का अङ्ग है, और पुरुष स्त्री का अङ्ग है। अजपा-सहित आत्मा गायत्री का जप स्त्रियों को भी करना चाहिए ॥ १९ ॥

अजपा ब्राह्मणी तत्र गायत्री ब्राह्मणः स्वयम् ।
यदि शक्तिश्च गायत्री' तत्राऽपि ब्राह्मणः शिवः ॥ २० ॥

अजपा ब्राह्मणीरूप है और ब्राह्मण स्वयं गायत्रीरूप है यदि गायत्री शक्ति है तो ब्राह्मण स्वयं शिवरूप है ॥ २० ॥

वर्णव्याप्तिस्थितो ब्रह्मा शिवः परमकारणः ।
गायत्र्या धारणाशक्तिर्ब्रह्माणी भूर्भुवःस्वरः ॥ २१ ॥
पुरुषस्तत्र गायत्री शिवः परमकारणः ।
शेते निरञ्जनो देवः पञ्चाशन्मातृकापुरे ॥ २२ ॥

उसी वर्ण में ब्रह्मा व्याप्त रूप से रहते हैं तथा उसके परम कारणरूप शिव हैं। भूः, भुवः, स्वःरूपा, गायत्री धारणाशक्ति है तो पुरुष शिवरूप हैं। उसी पचास वर्ण वाले मातृका नगर में निरञ्जन देव शयन करते हैं ॥ २१-२२ ॥

अन्तर्यामी जगत्स्वामी पुरुषस्तेन कथ्यते ।
प्रकृष्टवचनं प्रश्च सृष्टिश्च कृतिरुच्यते ॥ २३ ॥
प्रकृतिः कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रकृत्या सह योगेन ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ॥ २४ ॥
शक्तो भवति सर्वत्र शक्तिस्तेनैव कथ्यते ।
संपूज्य पार्थिवं लिङ्गं नित्यं भक्तियुतो नरः ॥ २५ ॥
शक्तिश्च पूजयेत्तस्मिन्नावाह्य विधिपूर्वकम् ।
पूजनात् फलमाप्नोति चाधिकमधिकं यथा ॥ २६ ॥
एवं स्त्रीसंसर्गतो विप्रो गायत्र्याः फलमाप्नुयात् ।
इति भेदं महेशानि षट्चक्रे परिचिन्तयेत् ॥ २७ ॥

वही निरञ्जन, अन्तर्यामी, जगत्स्वामी, पुरुष कहा जाता है। अब प्रकृति के अर्थका निरूपण करते हैं। प्र—माने प्रकृष्ट वचन और कृति माने सृष्टि। इसी को प्रकृति कहते हैं। ऐसा तत्त्वज्ञानी मुनियों का कथन है। उस प्रकृति के साथ ही योग होने से करोड़ों ब्रह्माण्ड समर्थ होता है। इसी लिए उसे शक्ति भी कहते हैं। इस प्रकार सदैव मनुष्य प्राथिव लिङ्ग का पूजन करे। और उस में शक्ति का आवाहन कर विधि-विधान से पूजन करने से मनुष्य अधिकाधिक फल को प्राप्त करता है। तथा शक्तिरूपा स्त्री के संसर्ग से ब्राह्मण गायत्री जप का फल प्राप्त करे। हे महेश्वरी, इस भेद का षट्चक्र में साधक चिन्तन करे ॥ २३–२७ ॥

विशेषश्चात्र वक्ष्यामि अतिगुह्यं शृणु प्रिये ।
कृते त्रेतायुगे भद्रे द्वापरे प्रणवत्रयम् ॥ २८ ॥

हे प्रिये, अब इस विषय में मैं तुम से विशेष गुप्त रहस्य का वर्णन करता हूँ, उसे सावधान पूर्वक सुनो। सत्ययुग, द्वापर एवं त्रेता में तीन प्रवण से युक्त गायत्री का जप करे ॥ २८ ॥

अशुद्धाः शूद्रकर्माणो ब्राह्मणाः कलिसम्भवाः ।
प्रणवैः पुटितं कृत्वा प्रतिवर्णं पृथक् पृथक् ॥ २९ ॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा एकधा वाऽपि सुन्दरि।
प्रणवत्रयसंयुक्तां गायत्रीं प्रजपेत्ततः ॥ ३० ॥
गायत्र्याः फलमाप्नोति अन्यथाऽरण्यरोदनम्।
युगे युगे तथा राजा वैश्यश्चैव युगे युगे ॥ ३१ ॥

हे सुन्दरी, गायत्री के प्रत्येक वर्ण को प्रणव से सम्पुटित कर अष्टोत्तरशत (१०८) बार जप करने से अशुद्ध एवं शूद्र कर्म करने वाले कलियुगी ब्राह्मण भी शुद्ध हो जाते हैं। एक बार भी इस प्रकार गायत्री जप करने से उसके समस्त फल के भागी बन जाते हैं। उसी प्रकार तीन प्रणव से युक्त गायत्री का जप करे। इस प्रकार से जो गायत्री का जप नहीं करता तो उसको गायत्री जप का फल उसी प्रकार प्राप्त नहीं होता जिस प्रकार अरण्य का रोदन अर्थात् जङ्गल का रोना जिस प्रकार व्यर्थ होता है। उसी प्रकार तीन प्रणव से रहित गायत्री जप निष्फल हो जाता है। सत्य युग, द्वापर आदि प्रति युग में राजा (क्षत्रिय) एवं शूद्र होते हैं ॥ २९-३१ ॥

प्रणवद्वयसंयुक्तामष्टोत्तरशतं जपेत्।
ब्राह्मणे क्षत्रिये वैश्ये विशेषमिति निश्चयम् ॥ ३२ ॥

हे देवि, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को विशेष रूप से दो प्रणवयुक्त गायत्री १०८ बार जप करना चाहिये ॥ ३२ ॥

गायत्री च तथा देवि महाविद्या तथा प्रिये।
विद्यां वा चोपविद्यां वा प्रणवैः पुटितां कलौ ॥ ३३ ॥
जप्त्वा सिद्धिमवाप्नोति तद्वते विफलं भवेत्।
परंब्रह्ममयं क्षेत्रं रेतःशोणितसंयुतम् ॥ ३४ ॥

हे देवि, जिस प्रकार महाविद्या है उसी प्रकार यह गायत्री भी है। अतः महाविद्या एवं उपविद्या को प्रणव से सम्पुटित कर जप करने से ही कलियुग में सिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा नहीं। रेत, शोणित से युक्त ही क्षेत्र परब्रह्म है ॥ ३३-३४ ॥

निरीक्ष्य प्रविशेदात्मा राजते क्षेत्रमध्यतः।
अतोऽत्र कथ्यते राजा क्षत्रियस्तेन कथ्यते ॥ ३५ ॥

उस शोणित रेतमय क्षेत्र का निरीक्षण कर उस क्षेत्र के मध्य से जो राजते= शोभित होता है, उसे राजा कहते हैं। इसी से क्षत-मनुष्य की रक्षा करने से ही क्षत्रिय अर्थ है ॥ ३५ ॥

एवं निरीक्ष्य जीवात्मा क्षेत्रमध्ये विशेद् यतः।
ज्ञानात्मरहितो यस्मात् वैश्यस्तेनैव कथ्यते ॥ ३६ ॥

इस प्रकार ज्ञानात्म रहित जीवात्मा उस शोणित रेतमय क्षेत्र का भली भाँति निरीक्षण कर उसमें जो प्रवेश करे उसी को वैश्य कहते हैं ॥ ३६ ॥

रेतःशोणितनिर्माणं शूद्राण्या गर्भपञ्जरे।
दुर्गत्या प्रविशेदात्मा गायत्रीरहितस्थले ॥ ३७ ॥
ज्ञानात्मरहितो यस्मात् शूद्रस्तेनैव कथ्यते।
ब्राह्मण-क्षत्र-वैश्यानां क्षेत्रं ब्रह्ममयं सदा ॥ ३८ ॥

शूद्राणी के रेतःशोणितमय गर्भ में ज्ञानात्म रहित एवं गायत्री रहित जीवात्मा जब अत्यन्त दुर्गति से प्रवेश करता है, तभी वह शूद्र कहलाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का क्षेत्र सदा ब्रह्ममय ही रहता है ॥ ३७-३८ ॥

गायत्री परमं ब्रह्म सततं शूद्रवर्जितम्।
कृते त्रेतायुगे भद्रे द्वापरे च तथैव च ॥ ३९ ॥
ब्राह्मण-क्षत्र-वैश्यानां निकटे नापि तत्स्थितिः ॥ ४० ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए गायत्री ही परम ब्रह्म है शूद्रों के लिए नहीं। हे कल्याणी, सत्ययुग, त्रेता एवं द्वापर में उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के आगे शूद्रों की कभी भी स्थिति नहीं रहती ॥ ३९-४० ॥

स च शूद्रमयो विप्रः कलिकाले च भारते।
ब्राह्मणाः शूद्रकर्माण अत एव कलौ युगे।
नापितोऽपि द्विजं त्यक्त्वा नानाजातिमुपास्महे ॥ ४१ ॥

इत्यागमसन्दर्भे ज्ञानदर्पणे ब्राह्मणोल्लासे गायत्रीतन्त्रस्य द्वितीयब्राह्मणपटलः ॥ २ ॥

इस कलिकाल में, इस भारतवर्ष में शूद्रमय ब्राह्मण होते हैं। और वे शूद्रों का कर्म करने लगते हैं तथा नापित (नाऊ) भी उन ब्राह्मणों का परित्याग कर अन्य जाति की उपासना करने लगते हैं ॥ ४१ ॥

इस प्रकार पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रिकृत 'तत्त्वदीपिका' टीका में
आगमसन्दर्भ ज्ञानदर्पण के ब्राह्मणोल्लास में गायत्रीतन्त्र का
द्वितीय ब्राह्मण-पटल समाप्त ॥ २ ॥

—:०:—

तृतीय-पटलः

देव्युवाच—

याज्ञवल्क्ये महादेव ! प्रणवद्वयमीरितम् ।
इति मे संशयं छिन्धि कृपया परमेश्वर ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा कि हे महादेव, याज्ञवल्क्य ऋषि के मत में तो दो प्रणव के साथ गायत्री जप का विधान कहा है और आपने तीन प्रणवयुक्त गायत्री जप का विधान बताया है। अतः इस सन्देह का निराकरण करने की कृपा कीजिए ॥ १ ॥

देव उवाच—

प्रणवादि व्याहृतिः स्यादजपा भूर्भुवस्वरः ।
तकारादावकारान्ते प्रणवं त्रिगुणं ततः ॥ २ ॥

महादेव जी ने कहा—प्रणवादि व्याहृति से युक्त भूः, भुवः और स्वः यही अजपा नाम की गायत्री है। गायत्री मन्त्र के वर्ण के तत् का 'त' आदि वर्ण एवं 'यात्' का अन्तिम वर्ण 'तकार' इनमें तीन बार प्रणव का प्रयोग करना चाहिए ॥ २ ॥

गायत्री प्रणवश्चान्ते तकारेणानुकृष्यते ।
आद्यन्ते प्रणवं व्यक्तं याज्ञवल्कयस्य सम्मतम् । ३ ॥

गायत्री मन्त्र के प्रथम तत् का 'त' तथा यात् का अन्तिम 'त' वर्ण इन दोनों के साथ प्रणव (ॐ) का प्रयोग करे अर्थात् गायत्री मन्त्र का दो प्रणव लगा कर जप करे, यही याज्ञवल्क्य का मत है ॥ ३ ॥

प्रशस्तं क्षत्रवैश्येषु न च विप्रे कदाचन ।
प्रशस्तं ब्राह्मणे नित्यं प्रणवत्रयसंयुतम् ॥ ४ ॥
मध्ये च प्रणवं गुप्तं चकाराऽनुमतं प्रिये ।
चकारेण च इत्यस्य कृष्यते प्रणवत्रयम् ॥ ५ ॥

दो प्रणव युक्त गायत्री का जप क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए है, ब्राह्मण के लिए नहीं। ब्राह्मणों के लिए तो गायत्री मन्त्र के आदि, मध्य एवं अन्त वर्ण के प्रणव का प्रयोग कर गायत्री का जप करे। हे प्रिये, मध्य में प्रणव नहीं रहने पर भी चकार के बल से मध्य प्रणव का अनुकर्षण कर ब्राह्मण को तीन प्रणव युक्त गायत्री का जप करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

श्रीदेव्युवाच—

प्रणवव्याहृतिभ्याश्च गायत्र्या त्रितयेन च ।
प्रणवैकं स्मृतिमतं तत् कथं प्रणवद्वयम् ॥ ६ ॥

श्री पार्वती ने कहा कि हे देव, स्मृतिकार महर्षियों के मत में तो प्रणव, व्याहृति तथा इन तीनों का सम्मिलन ही एक प्रणव होता है ऐसा कहा गया है, तो दो प्रणव किस प्रकार हुए ? ॥ ६ ॥

प्रणवादिव्याहृतिः स्यादजपा भूर्भुवः स्वरः ।
प्रणवोक्त्या द्वयोक्त्या च निर्णयं प्रणवत्रयम् ॥ ७ ॥

प्रणवादि व्याहृति से भूः, भुवः, स्वः यही तो अजपा है। आप कभी तो दो प्रणव से युक्त गायत्री का जप करना चाहिए और कभी तीन प्रणव से युक्त गायत्री के जप का विधान बताते हैं, तो ऐसी विपरीतता क्यों ? ॥ ७ ॥

एका दण्डी ब्राह्मणीशक्तिर्द्वितीयं शिवमेव च ।
प्रथमं प्रणवे सूत्रे वह्निशक्तिर्द्वितीयके ॥ ८ ॥
तृतीये भास्करशक्तिः सोमशक्तिश्चतुर्थके ।
पितृदेवः पञ्चमे सूत्रे षष्ठसूत्रे प्रजापतिः ॥ ९ ॥
वासुदेवः सप्तमे सूत्रे नीलकण्ठोऽष्टमे तथा ।
नवमे सर्वदेवस्तु नवसूत्रविनिर्णयम् ॥ १० ॥
नित्यं नवगुणं सूत्रं प्रणवत्रयसंयुतम् ।
प्रणवद्वयसंयोगे कथं नवगुणं भवेत् ॥ ११ ॥

एक दण्डीयुक्त ब्राह्मी शक्ति और दूसरी शिवशक्ति है। नवतन्तुरूप यज्ञोपवीत में पहले में प्रणव, दूसरे में वह्नि, तीसरे में सूर्य, चौथे में सोम, पाँचवें में पितृदेव (अर्यमा), छठे में प्रजापति, सातवें में वासुदेव, आठवें में नीलकण्ठ और नवम सूत्र में समस्त देवता तथा उनकी शक्ति निवास करती है, इसी लिए यज्ञोपवीत में नव सूत्र होते हैं। और वह यज्ञोपवीत भी तीन प्रणव से युक्त होता है तो भला दो प्रणव के संयोग से नव सूत्र किस प्रकार हो सकते हैं, अर्थात् तीन प्रणव युक्त होने से तीन तिरीके नौ, यह संख्या आ जाती है और दो प्रणव युक्त यज्ञोपवीत मानेंगे तो दो चौके आठ ही होगा नव सूत्र किस प्रकार हुए ? इस सन्देह को निवृत्त करने की आप कृपा कीजिए ? ॥ ८-११ ॥

श्रीदेव उवाच—

प्रणवत्रयमित्युक्त्वा ग्रन्थिं दत्वा द्विजोत्तमः ।
दद्यात् क्षत्रियवैश्येषु तदा नवगुणं भवेत् ।
वामकाये ब्राह्मणस्य सदा नवगुणस्थितिः ॥ १२ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—हे पार्वती, ब्राह्मणों को चाहिए कि उस यज्ञोपवीत में तीन बार प्रणव का उच्चारण कर गाँठ लगावे। क्षत्रिय और वैश्य के

लिए भी नवगुण यज्ञोपवीत हो जाता है, और ब्राह्मण के लिए तो नवगुण से युक्त यज्ञोपवीत सदा बायें कन्धे की ओर रखना चाहिए ॥ १२ ॥

श्रीदेव्युवाच—

तत् कथं क्षत्रिये वैश्ये सूत्रं नवगुणं भवेत् ।
वामकायोऽथ विप्राणां क्षत्रवैश्ये तथैव हि ॥ १३ ॥
वामकाये सदा शक्तिर्विद्यते न च दक्षिणे ।
त्रिदण्डेन च संयुक्तं यज्ञसूत्रं यथा तथा ॥ १४ ॥
ब्राह्मणी एकदण्डी च द्वितीये ब्राह्मणः स्मृतः ।
ब्रह्मादिदेवतावृन्दैर्यज्ञसूत्रं यथा प्रिये ॥ १५ ॥
संपूज्य संस्थिता तत्र ह्यनिशं सुरपूजिते ।
यज्ञोपवीतं परमं नित्यं दर्भसमन्वितम् ॥ १६ ॥

श्री देवी ने कहा कि हे देव, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए यज्ञोपवीत सूत्र नौगुण वाला किस प्रकार हुआ इसे बताने की कृपा कीजिए । तत्पश्चात् महादेव जी ने कहा कि हे प्रिये, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए कारण कि, वाम भाग में ही शक्ति रहती है दक्षिण भाग में नहीं । त्रिदण्ड से युक्त यज्ञसूत्र होता है, एकदण्डी युक्त ब्राह्मणी होती है एवं दो दण्डी युक्त ब्राह्मण होता है । हे प्रिये, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं ने यज्ञोपवीत का पूजन कर उसका निर्माण किया । यज्ञोपवीत यदि कुशा से युक्त रखा जाय तो वह अति उत्तम होता है ॥ १३-१६ ॥

कुण्डलिनो महाबिन्दुर्हंसोपरि सुशोभनम् ।
हंसं तुरीयं चार्वङ्गि निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ १७ ॥
शिवरूपी हकारस्तु शक्तिः स परिकीर्तितः ।
हकारस्थोऽपि यो बिन्दुर्बिन्दुना जायते स च ॥ १८ ॥

हे सुन्दरी, हंसः, इस वर्ण में हंस शब्द के ऊपर जो महाबिन्दु है वही निरंजन, निर्विकार तुरीय हंस है । शिवरूपी जो हकार है वही शिवरूपी शक्ति है । हकार के ऊपर जो बिन्दु है वह बिन्दु से उत्पन्न हुआ है ॥ १७-१८ ॥

बिन्दुना जायते बिन्दुर्गायत्री बिन्दुना भवेत् ।
गायत्र्यां जायते सर्वं ब्रह्माण्डं कोटि-कोटिशः ॥ १९ ॥

बिन्दु से बिन्दु उत्पन्न होता है और बिन्दु से ही गायत्री उत्पन्न हुई । तथा उस गायत्री से करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥

हंसं तुरीयं मनसि विभाव्य प्रजपेन्मनुम् ।
हंसे तुरीये चार्वङ्गि न च आवाहनादिका ॥ २० ॥

हे सुन्दरी, मानसिक भावना को शुद्ध कर तुरीय हंस का जप करे । तुरीय हंस में आवाहनादिक की कोई भी आवश्यकता नहीं रहती ॥ २० ॥

गायत्र्यात्मकप्रणवे बिन्दौ कुर्यादावाहनादिकाम् ।
निकारान्ते वायुबीजे ह्यनुस्वारेषु भावना ॥ २१ ॥
परमाणुः सूक्ष्मतनुः सर्वव्यापी शिवो विभुः ।
प्रकृतिः कुण्डली स्वारः सर्वव्यापीति चाऽम्बिका ॥ २२ ॥

गायत्र्यात्मक प्रणवरूप बिन्दु में आवाहनादि करे । निकारान्त वायु बीज में तथा अनुस्वार में सूक्ष्म शरीर वाले सर्वव्यापी परमाणुस्वरूप विभु शिव की भावना करे । उसी स्थान पर प्रकृतिरूपा कुण्डली सर्वव्यापी रूप से रहती है ॥ २१-२२ ॥

अनुसूक्ष्मा स्वारसूतः स्वारसूक्ष्मा गता सदा ।
अनुस्वारः कथ्यते ते मुनिभिस्तन्त्रदर्शिभिः ॥ २३ ॥

अनुस्वार पद में अनु = सूक्ष्म, स्वार = उत्पन्न अर्थात् स्वारसूक्ष्मा, उसी को तत्त्वज्ञानी मुनि लोग अनुस्वार कहते हैं ॥ २३ ॥

सर्वं बिन्दुगतं ह्येतत् ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ।
व्यापकत्वादितत्त्वाच्च बिन्दुस्तेनैव कथ्यते ॥ २४ ॥

अनेक कोटि ब्रह्माण्ड इस बिन्दु से ही उत्पन्न हुए हैं, अतः सर्वव्यापक होने से ही उसे बिन्दु कहते हैं ॥ २४ ॥

ज्येष्ठा रौद्री स्थितिकृती बिन्दुद्वयविनिर्मितम् ।
नित्यं हि विगतः स्वर्गः स्वर्गश्च सृष्टिवाचकः ॥ २५ ॥

हंसः के 'स' में जो विसर्ग है उस दो बिन्दु से ज्येष्ठा, रौद्री शक्ति, स्थिति और कार्य करने वाली है । स्वर्ग शब्द विगत अर्थ में है और सृष्टिवाचक है ॥ २५ ॥

अष्टकालात्मको नित्यतमःसत्त्वात्मको विभुः ।
या नित्या प्रकृतिर्बिन्दुरनन्याश्रयनिर्णयः ॥ २६ ॥

अष्टकालात्मक नित्यतम सत्त्वात्मक विभुरूप है । बिन्दुरूप प्रकृति नित्य है, जो सत्त्व, रज तथा तम इन से भिन्न नहीं है ॥ २६ ॥

नास्ति बिन्दोः परं तत्र तत्त्वं तेन हि ईरितम् ।
अत एव हि सर्वत्र विसर्गेत्यभिधीयते ॥ २७ ॥

बिन्दु से परे कुछ भी नहीं है, इसी से तो उसे तत्त्व कहा गया है । अतएव उसे विसर्ग भी कहते हैं ॥ २७ ॥

अन इत्यक्षरब्रह्म शब्दःप्रकृतिकुण्डली ।
न्यकारः प्रत्ययाकारा नित्या श्रीपरकुण्डली ॥ २८ ॥

अनन्य में अन शब्द का अर्थ अक्षरब्रह्म है और शब्दप्रकृति कुण्डलीरूपा है । न्यकार प्रत्यय आकाररूपा है, और श्री परकुण्डलीरूपा है तथा नित्य हैं ॥ २८ ॥

अनन्यशक्तिमासाद्य ह्याविरासीत् शिवो विभुः ।
अनन्यकुण्डली शक्तिः परस्य ब्रह्मणो गतिः ॥ २९ ॥

उस अनन्यशक्ति को प्राप्त कर ही विभु शिव उत्पन्न हुए । अनन्य कुण्डली शक्ति ही परब्रह्म की गति है ॥ २९ ॥

कुण्डल्याः परमब्रह्म गतिर्वेदेषु निर्णयः ।
अन्तर्यामी जगत्स्वामी सर्वव्यापी शिवो विभुः ॥ ३० ॥
शरीरं परमं ब्रह्म शरीरं तस्य कुण्डली ।
अनन्यं हि विना ब्रह्म कुत्रापि नास्ति सुन्दरि ॥ ३१ ॥

वेद में इसी प्रकार प्रतिपादन किया गया है कि कुण्डली की गति परब्रह्म तक है । वही अन्तर्यामी जगत् स्वामी सर्वव्यापी विभु शिव है । उसका शरीर ही परम ब्रह्म है तथा कुण्डली भी है । हे सुन्दरी, अनन्य के बिना वह ब्रह्म कहीं भी नहीं है ॥ ३०-३१ ॥

अनन्यपूजनाद्ध्यानादाविरासीत् सनातनः ।
अन्योऽन्यमाश्रयाद्वेदे ह्यनन्यमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥

उस अनन्य के ध्यान एवं पूजन से सनातन उत्पन्न हुए । वेद में अन्योन्य के आश्रयण से ही अनन्य ऐसा कहा गया है ॥ ३२ ॥

पुनः पुनः पदोक्त्या च आगमे नास्ति दूषणम् ।
बिन्दुनाऽऽवाहानं तस्याः शेषबिन्दौ विसर्जनम् ॥ ३३ ॥

बारम्बार पदों के कहने पर भी आगम में पुनरुक्त दोष नहीं है । बिन्दु से आवाहन कर उस बिन्दु का शेष बिन्दु में विसर्जन कर दे ॥ ३३ ॥

समर्पणं मध्यबिन्दौ बिन्दुमध्येषु भावना ।
ध्यानञ्च भावना बिन्दौ इति पञ्चाङ्गनिर्णयम् ॥ ३४ ॥

बिन्दु के मध्य में भावना कर के मध्य बिन्दु में समर्पित करे । और बिन्दु में ध्यान की भी भावना करे । इस प्रकार पञ्चाङ्ग का निर्णय होता है ॥ ३४ ॥

निकारान्ते स्थिता घोरा अनुस्वारसमन्विता ।
भावना बिन्दुमध्येषु नास्ति किञ्चिद्विचारणा ॥ ३५ ॥

निकार के अन्त में स्थित अनुस्वार से युक्त घोरा भावना बिन्दु के मध्य में बिना विचारे करे ॥ ३५ ॥

महामरकतभासा वायुबीजमितीरिता ।
घोरचन्द्रप्रतीकाशा शमनाकारनिर्णयम् ॥ ३६ ॥

महामरकत मणि के समान देदीप्यमान वायुबीजका स्वरूप है । वह चन्द्र के समान शीतलता प्रदान करने वाली है ॥ ३६ ॥

निकारान्ते वायुबीजस्वरूपा पुष्पशोभिता ।
प्रथमप्रणवे वामा ज्येष्ठा मध्ये च वैष्णवी ॥ ३७ ॥
तथैव शेषप्रणवे रौद्री संहारकारिणी ।
गायत्री परमब्रह्म दशबिन्द्वात्मिका स्मृता ॥ ३८ ॥

निकारान्त में पुष्प से सुशोभित वायु बीज रहता है, यही उसका स्वरूप है । प्रथम प्रणव में वामा, ज्येष्ठा तथा मध्य प्रणव में वैष्णवी एवं शेष प्रणव में संहारकारिणी रौद्री निवास करती है । परम ब्रह्मस्वरूपा गायत्री दस बिन्दु से युक्त हैं ॥ ३७-३८ ॥

वायुबीजे समारूढा श्रीबिन्दौ भावना सदा ।
अत एव हि गायत्री सृष्टिस्थितिलयं क्रमात् ॥ ३९ ॥

श्री बिन्दु में वायुबीज से युक्त भावना करे । इसीलिए गायत्री उत्पत्ति, स्थिति एवं लय त्रिगुणात्मिका शक्ति रहती है ॥ ३९ ॥

रेतःशोणितसंयोगे यदा देहः प्रजायते ।
कश्चिदात्मा तदा तस्मिन् जीवभावः प्रपद्यते ॥ ४० ॥

जिस समय रेत और शोणित के संयोग से देह उत्पन्न होता है, उसी समय उस देह में कोई आत्मा जीवरूप से निवास करता है ॥ ४० ॥

शरीरं प्रकृतेस्तत्त्वं गायत्र्यक्षरनिर्मितम् ।
अत आहुर्ब्रह्मकलां प्रतिसेतुं यथा तथा ॥ ४१ ॥

प्रकृति का तत्त्वभूत यह शरीर गायत्री के अक्षर से बना हुआ है । इसी लिए उसे प्रत्येक सेतु रूप ब्रह्मकला कहते हैं ॥ ४१ ॥

अत आत्मेति जीवेति शरीरीति च कथ्यते ।
त्वक्-श्मश्रु-रोमसंयुक्तं मज्जा-शुक्रास्थिसंयुतम् ॥ ४२ ॥

इसी लिए तो उसे आत्मा जीव और शरीरी कहते हैं । त्वक्, श्मश्रु, रोम, मज्जा, अस्थि, शुक्र से युक्त ॥ ४२ ॥

पुरीष-मूत्र-विड्युक्तं कफ-पित्तयुतं तथा ।
इदं नश्वरदेहः स्यात् शरीराद्भिन्नमुच्यते ॥ ४३ ॥

तथा पुरीष, मूत्र से युक्त और कफ, पित्त से युक्त यह नाशवान् देह उस शरीर से भिन्न है ॥ ४३ ॥

शरीराभ्यन्तरे मूले त्रिकोण तेजसां निधिः ।
स ब्रह्मा स शिवः सूर्य्यः स चाग्निः स च चन्द्रमाः ॥ ४४ ॥
स एव विष्णुः स गुरुरन्तरात्मा स उच्यते ।
सार्द्धत्रिवलयाकारा विसतन्तुसमाकृतिः ॥ ४५ ॥
त्रिकोणाभ्यन्तरे शून्ये कोटिचन्द्रप्रदीपिते ।
कोटिविद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता ॥ ४६ ॥

शरीर के मध्य मूल भाग में जो त्रिकोण है वही तेज का निधिरूप है। वही ब्रह्मा, वही सूर्य, वही शिव, वही अग्नि और वही चन्द्रमा है तथा वही विष्णु, वही गुरु है और अन्तरात्मा भी वही है। सार्ध त्रिबलय के आकार वाला एवं बिसतन्तुस्वरूप त्रिकोण के मध्य शून्य में करोड़ों चन्द्र एवं बिजली के प्रकाश के समान कुण्डलीरूप से स्थित है ॥ ४४-४६ ॥

अत एव हि सर्वत्र परमात्मा प्रकीर्तितः ।
परमात्मा समं ज्ञानं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ ४७ ॥
अगम्यं सर्वदेवानां सूक्ष्मं ज्योतिर्मयं विभुम् ।
अनेक-कोटिसानन्द-पञ्चाशन्मातृकाक्षरम् ॥ ४८ ॥
निर्मलं परमं ब्रह्म शिवं परमकारणम् ।
सुवर्णं सर्वदं शान्तं ह्यम्बरे चन्द्रमा यथा ॥ ४९ ॥

अत एव सभी में वह परमात्मा रूप से स्थित है। वह परमात्मा निर्विकार, निरंजन तथा समस्त देवताओं से भी अगम्य सूक्ष्म ज्योतिस्वरूप विभु एवं पंचाशत् मातृकाक्षर रूप निर्मल परम ब्रह्म तथा शिवरूप सुवर्ण एवं आकाश में चन्द्रमा के समान शान्त है ॥ ४७-४९ ॥

ज्ञानात्मा कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ।
त्रिविधो जायते देहः स्त्री-पुं-नपुंसकं तथा ॥ ५० ॥

इसी लिए तो तन्त्रविशारद लोग उसे ज्ञानात्मा कहते हैं। और यह शरीर स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक इस भेद से तीन प्रकार का होता है ॥ ५० ॥

रजोऽधिका भवेन्नारी भवेद्रेतोऽधिकः पुमान् ।
तथा नपुंसकी देहः समानो रेतःशोणितैः ॥ ५१ ॥

इसकी अधिकता से नारी एवं रेत की अधिकता से पुरुष तथा रेत एवं शोणित के समानता से नपुंसक होता है ॥ ५१ ॥

शुद्धसत्त्वात्मको जीवः सह इत्यक्षरात्मकः ।
हंसौ बिन्द्वात्मकौ नित्य नान्यथा परिचिन्तय ॥ ५२ ॥

हंसः में 'सः' इस अक्षर से युक्त जीव है, हंसः में बिन्दुरूप नित्य है। इसका अन्यथा चिन्तन नहीं करना चाहिए ॥ ५२ ॥

रेतःशोणितसंयोगं यदा गर्भः प्रजायते ।
किञ्चिदात्मा यदा तस्मिन् जीवभावः प्रपद्यते ॥ ५३ ॥
तत्क्षणाच्चैव गायत्री जीवात्मना सह जायते ।
जीवव्यक्तिस्तत्र आत्मा कला श्रीरन्तरात्मनः ॥ ५४ ॥

जिस समय रेत और शोणित के संयोग से गर्भ स्थित होता है, उस समय वह जीव कहलाता है। उसी समय गायत्री जीवात्मा के साथ सम्बन्धित होती है। उस स्थान पर जीव व्यक्ति एवं अन्तरात्मा की श्रीरूप कला ही आत्मा है ॥ ५३-५४ ॥

गायत्री परमा विद्या तत्र एकत्र तिष्ठति ।
गायत्री ब्रह्मणस्तत्र कला श्रीः परमात्मनः ॥ ५५ ॥

उसी स्थान में परमा विद्यारूप गायत्री निवास करती है। ब्रह्मा एवं परमात्मा की कला श्रीरूप मे रहती है ॥ ५५ ॥

जीवात्मा तत्र संप्राप्य गायत्रीं तत्त्वरूपिणीम् ।
जीवात्मा चैव गायत्री एकत्र तत्र तिष्ठति ॥ ५६ ॥

तत्त्वरूप गायत्री को प्राप्त कर जीवात्मा रहता है, तभी जीवात्मा और गायत्री एक ही स्थान में रहते हैं ॥ ५६ ॥

परस्य ब्रह्मणो देवि तत्रैव ह्यनिशं स्थितिः ।
ब्रह्मविद्यामयो जीवो ज्ञानात्मसहितः सदा ॥ ५७ ॥

हे देवि, उसी स्थान में परब्रह्म की निरन्तर स्थिति रहती है। और ज्ञानात्मा के साथ यह ब्रह्म विद्यामय जीव निरन्तर निवास करता है ॥ ५७ ॥

ब्राह्मणः कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ।
एवं तत्त्वमयो भद्रे क्षत्रियो वैश्य एव च ॥ ५८ ॥
न शूद्रे विद्यते तत्त्वं गायत्र्यक्षरसंयुतम् ।
रूपादितत्त्वसयुक्तं गायत्र्यक्षरवर्जितम् ॥ ५९ ॥

इसी से मुनिगण उसे ब्राह्मण कहते हैं। हे भद्रे, उसी प्रकार क्षत्रिय एवं वैश्य में भी तत्त्वमय ब्रह्म निवास करता है। गायत्री वर्ण से युक्त तत्त्व शूद्र में नहीं रहता। उस स्थान में तो गायत्री वर्ण से रहित रूपादि तत्त्व रहता है ॥ ५८-५९ ॥

प्रजपेद् यत्नतो विद्वान् गायत्रीं बिन्दुमण्डले ।
तदैव सहसा भद्रे ह्यात्मन्येव समर्पणम् ॥ ६० ॥

पहले बिन्दुमण्डल में बुद्धिमान् को चाहिए कि वह गायत्री मन्त्र का जप करे । पुनः एकाएकी अपनी आत्मा में समर्पण कर दे ॥ ६० ॥

यथा मनस्तथैवाऽऽत्मा गच्छेत मनसेच्छया ।
तथेच्छया पदे भद्रे प्रययौ बिन्दुमण्डलम् ॥ ६१ ॥

जिस प्रकार अपनी इच्छा से मन अपने में जाता है, उसी प्रकार मन अपनी इच्छा से आत्मा में जाता है और उसी प्रकार इच्छा से बिन्दुमण्डल में जाता है ॥ ६१ ॥

आयाहि वरदे ध्याने ह्यागतो बिन्दुमण्डलात् ।
एकधा स्मरणे भद्रे बिन्दुमध्ये समर्पणम् ॥ ६२ ॥

बिन्दुमण्डल से ध्यान में उसका स्वरूप आता है । उसके बाद बिन्दु के मध्य में उस रूप का समर्पण करे ॥ ६२ ॥

प्रातःकाले जपेन्मन्त्रं यत्नतः सूर्यमण्डले ।
मध्याह्ने प्रजपेद्देवीं यत्नतो वह्निमण्डले ॥ ६३ ॥
सायाह्ने प्रजपेद्देवीं यत्नतश्चन्द्रमण्डले ।
नकारान्ते विसर्गो यो बिन्दुद्वयविनिर्मितः ॥ ६४ ॥
ईश्वरस्तु अधोबिन्दुरूर्ध्वबिन्दुः सदाशिवः ।
प्रातःकाले ह्यधोबिन्दौ मध्याह्ने ऊर्ध्वबिन्दुषु ॥ ६५ ॥
सायाह्ने चैव श्रीबिन्दौ भावना परमे शिवे ।
रसबिन्द्वात्मको मन्त्र इति वा तन्त्रकल्पना ॥ ६६ ॥

प्रातःकाल सूर्यमण्डल में, मध्याह्न में वह्निमण्डल तथा सायंकाल चन्द्रमण्डल में प्रयत्नपूर्वक जप करे । गायत्री मन्त्र के नकार में जो दो विसर्ग हैं, उसमें नीचे वाला बिन्दु ईश्वर और ऊपर वाला बिन्दु शिव है । प्रातःकाल नीचे के बिन्दु में, मध्याह्न में ऊपर के बिन्दु में तथा सायङ्काल श्रीबिन्दु में भावना करे । तन्त्रों में इस प्रकार कहा गया है कि रसबिन्दुस्वरूप ही मन्त्र है ॥ ६३-६६ ॥

वायुबीजे समारूढः श्रीबिन्दुं वरवर्णिनि ।
संयुक्तचन्द्रसूर्याग्निमण्डलेन ह्यहर्निशम् ॥ ६७ ॥

अत एव हे देवि, वायु बीज से युक्त चन्द्र, सूर्य, अग्निमण्डल स्वरूप श्रीबिन्दु में निरन्तर ब्रह्म की भावना करे ॥ ६७ ॥

श्रीदेव्युवाच—

एवमात्मपरिच्छन्नो निर्विकारः शिवोपमः ।
तत् कथं त्वमहं ज्ञानं जीवात्मनः प्रजायते ।
आत्मशक्तिधरस्त्वं हि संशयं छिन्धि मे प्रभो ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् पार्वती जो अपने प्रिय भगवान् शङ्कर से प्रश्न कर रही हैं कि हे प्रभो, आत्मपरिच्छन्न, निर्विकार, शिवतुल्य जीवात्मा को त्वं (तुम), अहं (मैं) ज्ञान यह किस प्रकार होता है । इस सन्देह को नष्ट करने की आप कृपा कीजिए ? ॥६८॥

श्रीदेव उवाच—

वामपार्श्वे स्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम् ।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनादिकम् ॥ ६९ ॥
काम-क्रोधादिभिर्युक्तमज्ञान-तिमिरावृतम् ।
अजीवं तच्च विज्ञेयमात्मना भिन्नमुच्यते ॥ ७० ॥

श्री महादेव जी कहते हैं—बायीं ओर काजल के समान कान्तिवाला पाप पुरुष स्थित है । वह ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी गमन एवं काम, क्रोध आदि से युक्त तथा अज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित वह पापपुरुष आत्मा से भिन्न अजीव स्वरूप है ॥ ६९-७० ॥

अजीवाज्जायते पापं पुण्यं जीवात् प्रजायते ।
पापं वा यदि वा पुण्यं उभयोः कारणं मनः ॥ ७१ ॥

अजीव से पाप और जीवात्मा से पुण्य होता है, क्योंकि पाप और पुण्य दोनों का कारण मन है ॥ ७१ ॥

द्विविधा प्रकृतिर्ज्ञेया उत्तमा ह्यधमा तथा ।
अधमा विकृतिर्ज्ञेया ह्युत्तमा प्रकृतिः स्मृता ॥ ७२ ॥

उत्तमा और अधमा इस भेद से प्रकृति दो प्रकार की है । उसमें अधमा विकृति तथा उत्तमा प्रकृति है ॥ ७२ ॥

कारणमश्वमेधादेः प्रकृतिः परमेश्वरी ।
विकृतिः प्रकृतेरन्या क्रियते पापसञ्चयम् ॥ ७३ ॥

अश्वमेधादि यज्ञ का कारण प्रकृति है । प्रकृति से विकृति भिन्न है, और वह विकृति पाप संचय करती है ॥ ७३ ॥

मनसा विस्मृतो भूत्वा त्यक्त्वाऽऽत्मानं यदा तदा ।
अजीवः क्रियते पापं मनसा सह सुन्दरि ॥ ७४ ॥

हे सुन्दरी, वह अजीव मन से विस्मृत होकर, तथा आत्मा का परित्याग कर मन से निरन्तर पाप करता रहता है ॥ ७४ ॥

अत एव हि सर्वत्र कथ्यते चात्मविस्मृतिः ।
अनात्मस्मरणे पापं पुण्यं हि आत्मना तथा ॥ ७५ ॥

अतएव आत्म-विस्मृति ही इसमें कारण माना जाता है । अनात्म के स्मरण में पाप एवं आत्म-स्मरण में पुण्य होता है ॥ ७५ ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि उद्धारं ब्रह्मविग्रहम् ।
प्रणवं प्रथममुक्त्वा भूःकारं तदनन्तरम् ॥ ७६ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्म शरीररूपी गायत्री का उद्धार बताते हैं । पहले प्रणव का उच्चारण कर, बाद में भूः का उच्चारण करे ॥ ७६ ॥

भुवःकारं ततो देवि स्वःकारं तदनन्तरम् ।
अजपेयं महाविद्या ब्राह्मणी ब्राह्मणीं प्रति ॥ ७७ ॥

उसके बाद भुवः तथा स्वः का उच्चारण करे । यही अजपा महाविद्या कही जाती है । उसे ब्राह्मणी भी कहते हैं ॥ ७७ ॥

रेतःशोणितसंयोगे ब्राह्मणस्य स्थितिर्यथा ।
एवं सर्वत्र चार्वङ्गि ब्राह्मण्याः स्थितिरुच्यते ॥ ७८ ॥

रेत शोणित के संयोग में ब्राह्मणी के प्रति जिस प्रकार ब्राह्मण की स्थिति होती है, उसी प्रकार ब्राह्मणी की भी स्थिति होती है ॥ ७८ ॥

उद्वाहे ब्राह्मणस्त्रीणामजपास्मरणं गुरोः ।
ओं भूर्भुवः-स्वः-परित्यागे शक्तिहीनो भवेद् द्विजः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार ब्राह्मण और ब्राह्मणी के विवाह में गुरु के स्मरण करने का ही नाम अजपा है । भूः, भुवः, स्वः का परित्याग करने से ब्राह्मण शक्तिहीन हो जाता है ॥ ७९ ॥

एवं हि ब्राह्मणस्त्रीणां क्षत्रादीनां तथैव च ।
पुं-स्त्री नपुंसके भद्रे ह्यात्मा जीवस्य संस्थितिः ॥ ८० ॥

इस प्रकार हे प्रिये, ब्राह्मणस्त्रियों तथा क्षत्रियादि को तथा पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक में जीव की आत्मा निवास करती है ॥ ८० ॥

वकारान्ते विसर्गो यः रौद्री-ज्येष्ठा-समन्वितः ।
स्वकारान्ते तथा भद्रे रौद्री ज्येष्ठा तथैव हि ॥ ८१ ॥

गायत्री मन्त्र के वकार में जो विसर्ग है वह रौद्री तथा ज्येष्ठा से युक्त है । उसी प्रकार स्वः का विसर्ग भी रौद्री एवं ज्येष्ठा से युक्त है ॥ ८१ ॥

प्रथमे प्रहरे रात्रौ द्वितीये च तृतीयके ।
चतुर्थे प्रहरे चैव दशधा दशधा जपेत् ॥ ८२ ॥

रात्रि के प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चौथे प्रहर में दस-दस गायत्री का जप करे ॥ ८२ ॥

विन्दुमध्ये जपेन्मन्त्रं चतुर्विन्दुं यथाक्रमम् ।
प्रथमप्रहरे रात्रौ दशधा दशधाऽथवा ॥ ८३ ॥

रात्रि के प्रथम प्रहर में चतुर्विन्दु के मध्य दस-दस गायत्री का जप करे ॥ ८३ ॥

पठित्वा कवचान् जप्त्वा प्राप्यते रजनीफलम् ।
अन्यथा विफलं सन्ध्या या कृता दिवसे द्विजैः ॥ ८४ ॥

पहले कवच का पाठ कर, पश्चात् जप करने से रात्रि का फल प्राप्त होता है । इसके विपरीत दिन में की हुई ब्राह्मणों की सन्ध्या निष्फल हो जाती है ॥ ८४ ॥

दशविन्द्वात्मिका विद्या गायत्री तन्त्रसम्मता ।
यः पुमान् पिङ्गलः खर्व ईषत्ताम्रमुखच्छविः ॥ ८५ ॥

दस बिन्दु युक्त गायत्री तन्त्रशास्त्र में सम्मत है । जो मनुष्य पिङ्गल वर्ण, नाटा तथा कुछ रक्त वर्ण के मुख वाला है ॥ ८५ ॥

रक्तकेशः श्यावदन्तो दन्तमध्ये विराजते ।
स क्रूरः कथ्यते वेदे महापातकसंयुतः ॥ ८६ ॥

और रक्त केशयुक्त एवं दाँत के ऊपर दाँत वाला है, तो वह वेद में क्रूर एवं महापातकी कहा गया है ॥ ८६ ॥

दिनकृत्यं वृथा तस्य मूर्तिमान् पातकः स च ।
यथा तस्य वृथा पूजा गायत्रीरहितस्तथा ॥ ८७ ॥

क्यों कि वह मूर्तिमान् पातकरूप है । जिस प्रकार उस का किया हुआ जप एवं पूजा व्यर्थ होती है, उसी प्रकार गायत्री रहित जप, पूजा व्यर्थ होती है ॥८७॥

निगद्य ब्राह्मणीं भद्रे ब्राह्मणं कथयामि ते ।
ओंकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकम् ॥ ८८ ॥

हे भद्रे, ब्राह्मणी का यथावत् निरूपण कर अब मैं तुम से ब्राह्मण गायत्री का निरूपण कर रहा हूँ । सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, शिवस्वरूप ओंकार का उच्चारण करे ॥ ८८ ॥

तकारं रूपतत्त्वञ्च रूपसिद्धिप्रदायकम् ।
त्सकारं रसतत्त्वञ्च रसात् सिद्धिप्रदायकम् । ८९ ॥

तदनन्तर रूपसिद्धि को देने वाला रूपतत्त्व तकार का उच्चारण करे । पुनः रससिद्धि प्रदायक रसतत्त्वरूप 'त्स' का उच्चारण करे ॥ ८९ ॥

विकारं गन्धतत्त्वञ्च गन्धसिद्धिप्रदायकम् ।
तुकारं स्पर्शतत्त्वञ्च स्पर्शसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९० ॥

उसी प्रकार गन्धसिद्धि प्रदायक गन्धतत्त्वरूप 'वि' का तथा स्पर्शसिद्धि प्रदायक स्पर्शतत्त्वरूप 'तु' का उच्चारण करे ॥ ९० ॥

वकारं शब्दतत्त्वञ्च शब्दसिद्धिप्रदायकम् ।
तत्त्वमेतन्महागुह्यं गायत्र्याः शीर्षमुच्यते ॥ ९१ ॥

उसके बाद शब्द सिद्धिप्रदायक शब्द तत्त्वरूप 'व' का उच्चारण करे । यही गायत्री का अत्यन्त गुप्त शीर्ष है ॥ ९१ ॥

रेकारं त्वचतत्त्वञ्च त्वचः सिद्धिप्रदायकम् ।
ण्यकारं घ्राणतत्त्वञ्च घ्राणसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९२ ॥

उसी प्रकार त्वक्सिद्धि प्रदायक त्वचतत्त्वरूप 'रे' का तथा प्राणसिद्धि प्रदायक घ्राणतत्त्वरूप 'ण्य' का उच्चारण करे ॥ ९२ ॥

वायुबीजं ततो भद्रे बिन्दुना सहितं प्रिये ।
जिह्वातत्त्वमिदं प्रोक्तं रसनासिद्धिदायकम् ॥ ९३ ॥

हे प्रिये, यही वायुबीज बिन्दु के सहित रसनासिद्धि प्रदायक जिह्वातत्त्व तन्त्र में कहा गया है ॥ ९३ ॥

वायुबीजद्वयं भद्रे गायत्रीषु प्रतिष्ठितम् ।
निकारान्ते स्थितं बीजं विसर्गान्तः स्वरोपमम् ॥ ९४ ॥

इस प्रकार गायत्री में दो वायु बीज कहे गये हैं । 'नि' के अन्त में विसर्गान्त स्वर बीज है ॥ ९४ ॥

भकारमक्षितत्त्वञ्च अक्षिसिद्धिप्रदायकम् ।
र्गोकारं श्रोत्रतत्त्वञ्च श्रोत्रसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९५ ॥

उसी प्रकार अक्षिसिद्धि प्रदायक अक्षितत्त्वरूप 'भ' का तथा श्रोत्रसिद्धि प्रदायक श्रोत्रतत्त्वरूप 'र्गो' का उच्चारण करे ॥ ९५ ॥

तत्त्वमेतन्महागुह्यं गायत्र्याः कुक्षिरुच्यते ।
देकारं वाक्यतत्त्वञ्च वाक्यसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९६ ॥

अत्यन्त गुप्त यह तत्त्व गायत्री का कुक्षि है । तत्पश्चात् वाक्यसिद्धि प्रदायक वाक्यतत्त्व रूप 'दे' का उच्चारण करे ॥ ९६ ॥

वकारं पाणितत्त्वञ्च हस्तसिद्धिप्रदायकम् ।
स्यकारं पादतत्त्वञ्च पादसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९७ ॥

हस्तसिद्धि प्रदायक पाणितत्त्वरूप 'व' का उच्चारण करने के बाद पादसिद्धि प्रदायक पादतत्त्व रूप 'स्य' का उच्चारण करे ॥ ९७ ॥

तत्त्वमेतन्महागुह्यं गायत्र्या गोत्रमुच्यते ।
वर्णचयं चतुर्वेदशाखापल्लवसंयुतम् ॥ ९८ ॥

इस तत्त्व को गायत्री का गोत्र कहते हैं । और यह अत्यन्त गुप्त है । 'तत्' से लेकर 'स्य' पर्यन्त गायत्री का वर्णसमूह चारों वेद में शाखा पल्लवरूप से कहा गया है ॥ ९८ ॥

धीकारं लिङ्गतत्त्वञ्च लिङ्गसिद्धिप्रदायकम् ।
मकारं पृथिवीतत्त्वं पृथ्वीसिद्धिप्रदायकम् ॥ ९९ ॥

उसके बाद लिङ्गसिद्धि प्रदायक लिङ्गतत्त्वरूप 'धी' का तथा पृथ्वीसिद्धि प्रदायक पृथ्वीतत्त्वरूप 'म' का उच्चारण करे ॥ ९९ ॥

हिकारं जलतत्त्वञ्च जलसिद्धिप्रदायकम् ।
धिकारं वह्नितत्त्वञ्च वह्निसिद्धिप्रदायकम् ॥ १०० ॥

उसी प्रकार जलसिद्धि प्रदायक जलतत्त्वरूप 'हि' का तथा वह्निसिद्धि प्रदायक वह्नितत्त्व रूप 'धि' का उच्चारण करे ॥ १०० ॥

योकारं शून्यतत्त्वञ्च शून्यसिद्धिप्रदायकम् ।
तत्त्वमेतन्महागुह्यं गायत्र्या देवता स्मृता ॥ १०१ ॥

तत्पश्चात् शून्यसिद्धि प्रदायक शून्यतत्त्वरूप 'यो' का उच्चारण करे । अत्यन्त गुप्त इस तत्त्व को गायत्री का देवता कहते हैं ॥ १०१ ॥

योकारं वायुतत्त्वञ्च वायुसिद्धिप्रदायकम् ।
नकारं पृथ्वीतत्त्वं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १०२ ॥

उसी प्रकार वायुसिद्ध प्रदायक वायुतत्त्वरूप 'यो' का तथा समस्तसिद्धि प्रदायक पृथिवीतत्त्वरूप 'न' का उच्चारण करे ॥ १०२ ॥

आत्मा ब्रह्मकलाजीवो गायत्री ब्रह्मनिश्चयम् ।
नान्ते बिन्दुद्वयं भद्रे श्यामलमरुणं सदा ॥ १०३ ॥

तदनन्तर 'नः' का जो बिन्दुद्वय है उसमें एक तो श्यामल है, और दूसरा अरुणरूप है, तथा वही ब्रह्मकला जीवमय ब्रह्मगायत्री है ॥ १०३ ॥

प्रकारं मनसस्तत्त्वं मनःसिद्धिप्रदायकम् ।
चोकारं बुद्धितत्त्वञ्च बुद्धिसिद्धिप्रदायकम् ॥ १०४ ॥

उसके बाद मनःसिद्धि प्रदायक मनस्तत्त्व 'प्र' का एवं बुद्धि सिद्धिप्रदायक बुद्धि तत्त्वरूप 'चो' इस वर्ण का उच्चारण करे ॥ १०४ ॥

अहं तत्त्वं दकारञ्च अहंसिद्धिप्रदायकम् !
यात्कारं चित्ततत्त्वञ्च चित्तसिद्धिप्रदायकम ॥ १०५ ॥

तदनन्तर अहंसिद्धि प्रदायक अहंतत्त्वरूप 'द'कार का तथा चित्तसिद्धि-प्रदायक चित्ततत्त्व रूप 'यात्'वर्ण का उच्चारण करे ॥ १०५ ॥

तत्त्वमेतन्महागुह्यं गायत्र्याः पादमुच्यते ।
प्रथमे परमेशानि तकारं खण्डमेव यत् ॥ १०६ ॥

इस अत्यन्त गुप्त तत्त्व को ही गायत्री का पाद कहते हैं। इसके प्रथम पाद में त कार खण्ड है ॥ १०६ ॥

सकारान्तर्गतो भूत्वा क्रियते पापमोचनम्।
अकारान्तर्गतं खण्डं शेषस्य वरवर्णिनि ॥ १०७ ॥

वही सकार के अन्तर्गत होकर पाप से मुक्त करता है और अकारान्तर्गत वर्ण खण्ड का शेष भाग है ॥ १०७ ॥

खण्डशेषे तकारञ्च ब्रह्महत्याप्रमोचनम्।
रेतःशोणितनिर्माणं शरीरं सर्वदेहिनाम् ॥ १०८ ॥

खण्ड के शेष में स्थित तकार ब्रह्महत्या पाप से मुक्त कराने वाला है। समस्त प्राणियों का शरीर रेत तथा शोणित से बना हुआ है ॥ १०८ ॥

शरीरं ब्राह्मणं भद्रे गायत्र्यक्षरसंयुतम्।
तत्र ह्यात्मा ब्रह्मकला शरीरे लयमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥

हे प्रिये, गायत्री अक्षर से युक्त शरीर ही ब्राह्मण है। उस शरीर में ब्रह्म-कला रूप आत्मा लीन होती है ॥ १०९ ॥

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यानां चतुर्विंशाक्षरैर्युतम्।
शरीरं न तु शूद्रादेर्निश्चयं कथितं प्रिये ॥ ११० ॥

चौबीस अक्षर से युक्त शरीरात्मक गायत्री का जप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही करना चाहिए शूद्र को नहीं। ऐसा ही शास्त्रकारों का निश्चय है ॥११०॥

रेकारं प्रथमे देवि तकारं तदनन्तरम्।
शोकारञ्च णिकारञ्च तकारञ्च तथैव च ॥ १११ ॥
गायत्र्याः परमेशानि इति अक्षरनिर्णयम्।
शूद्रादौ परमेशानि इति अक्षरचिन्तनम् ॥ ११२ ॥

जिस प्रकार समस्त चर शरीर रेतशोणितमय होता है। उसी प्रकार गायत्री का भी शरीर रेतशोणितमय है। पहले गायत्री के वर्ण में से 'रे' का, उसके बाद 'त' का, पुनः 'शो' का, अनन्तर 'णि' का, तत्पश्चात् 'त' का चिन्तन करने से गायत्री का स्वरूपभूत शरीर निर्माण होता है। शूद्र आदिकों के लिए शरीर-भूत गायत्री का चिन्तन नहीं है ॥ १११-११२ ॥

न जपे अधिकारोऽस्ति शूद्रादीनां कदाचन।
अतो जगच्छक्तिमयं शैवेन वैष्णवेन किम् ॥ ११३ ॥

अतएव शूद्रादिकों के लिए जप का अधिकार ही नहीं है। इसीलिए तो यह जगत् शक्तिमय है, चाहे वह शैव हो या वैष्णव ॥ ११३ ॥

एकधा श्रवणे स्त्रीणां जपो भवति सर्वदा।
अजपा कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ॥ ११४ ॥

स्त्रियों को तो केवल एक बार श्रवण मात्र से ही जप का फल प्राप्त होता है। अतएव तान्त्रिक मुनि लोग इसे अजपा कहते हैं ॥ ११४ ॥

प्रत्यहं प्रजपेद् या स्त्री सा साक्षाद् ब्राह्मणीश्वरी।
सा विष्णुः सा शिवो ज्ञेया जनशक्तिरितीरिता ॥ ११५ ॥

जो स्त्री इस अजपा गायत्री का नित्य जप करती है, वह साक्षात् ब्रह्मा, शिव, विष्णुरूप है, तथा मनुष्यों की शक्तिरूप भी वही है ॥ ११५ ॥

सशक्तिज्ञानयुगलं अहस्तेन प्रकीर्तितम्।
न जप्त्वा अजपाविद्यां ब्राह्मणी शूद्रिणी यथा ॥ ११६ ॥

शक्ति, ज्ञान दोनों से उसे अहः (दिन) कहा गया है। जो ब्राह्मणी अजपा का जप नहीं करती वह शूद्रिणी के समान है ॥ ११६ ॥

शूद्रिण्या सह योगेन ब्राह्मणाः शूद्रतां व्रजेत्।
यथा इधमस्य संयोगात् उत्तमा ब्राह्मणाऽधमाः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार शूद्रिणी के साथ सम्बन्ध होने से वह ब्राह्मण भी उसी प्रकार शूद्र बन जाता है, जिस प्रकार अधम के संसर्ग से उत्तम ब्राह्मण अधम बन जाता है ॥ ११७ ॥

त्रिविधा ब्राह्मणाः प्रोक्ता उत्तमाऽधममध्यमाः।
गायत्रीषु च सन्ध्यायां तथा वर्णनिरीक्षणे ॥ ११८ ॥

गायत्री में, सन्ध्या में तथा वर्ण-निरीक्षण में उत्तम, मध्यम, अधम भेद से ब्राह्मण तीन प्रकार के कहे गये हैं ॥ ११८ ॥

वर्णानां गुणविज्ञानैः सदर्थे च सुलोचने।
अनिशं जायते तस्य मनोबुद्धिर्वरानने ॥ ११९ ॥

गायत्री के वर्ण गुणज्ञान होनेवाले मनुष्य की मन और बुद्धि निरन्तर सत्कर्म में ही लगती है ॥ ११९ ॥

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यानां सच्छूद्राणां गृहे तथा।
भिक्षां कृत्वा तु यो विप्र उदरं परिपूरयेत् ॥ १२० ॥
उत्तमः स च विज्ञेयो मध्यं निगदामि ते।
गायत्रीषु च सन्ध्यायां सदा यस्य मनो भवेत्।
कृषिकर्मरतो भूत्वा करोति शूद्रयाजनम् ॥ १२१ ॥
मध्यमः स च विज्ञेयः अधमं निगदामि ते ॥ १२२ ॥

जो ब्राह्मण—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा सच्छूद्र के घर से भिक्षा माँगकर अपना उदर पोषण करता है, वह उत्तम ब्राह्मण है। जिस ब्राह्मण का चित्त

सन्ध्या-वन्दन एवं गायत्री जप में ही निरन्तर रहता है तथा खेती-बारी से अपनी जीविका चलाते हुए शूद्र की सेवा करता है वह मध्यम है ॥१२०-१२२॥

लाचालौहविक्रयणाद् यथा स्याद् ब्राह्मणोऽधमः ।
किं तस्य ब्रह्मविद्यायां नाऽधिकारः कदाचन ॥ १२३ ॥

जो ब्राह्मण लाह, लोहे आदि का विक्रय करता है, वह अधम है । ब्रह्मविद्या में ऐसे अधम ब्राह्मण का अधिकार कभी भी नहीं होता ॥ १२३ ॥

वरं यवनसंसर्गं कुर्यान्मध्यमब्राह्मणः ॥ १२४ ॥
वरं हड्डिपसंसर्गं संत्यजेत् ब्राह्मणाधमम् ।
सदर्थं सर्ववर्णानामज्ञात्वा ब्राह्मणाधमाः ॥ १२५ ॥

मध्यम श्रेणी के ब्राह्मण का यवन संसर्ग ठीक है, किन्तु अधम ब्राह्मण (हड्डिप संसर्ग) का संसर्ग उचित नहीं । समस्त वर्ण के सुन्दर पुण्य कार्य में अधम ब्राह्मण की प्रवृत्ति ही नहीं होती ॥ १२४-१२५ ॥

इति ते ब्राह्मणस्त्रीणां संस्कारं तन्त्रसम्मतम् ।
कथितमतिगोप्यं तन्निश्चयं वर्णदर्शने ॥ १२६ ॥

गायत्री वर्णदर्शन में अर्थात् गायत्री के जप करने में ब्राह्मण की स्त्री ब्राह्मणी का पूर्ण अधिकार है, यह तन्त्र सम्मत भी है । हे महेश्वरी, मैंने इस अत्यन्त गुप्त रहस्य का निरूपण किया है कि ब्राह्मणी को भी गायत्री जप का अधिकार है ॥ १२६ ॥

व्याहृतिर्या महेशानि सावित्री सैव ब्राह्मणी ।
न जपेद् दूषणं तन्त्रे ब्रह्मणोना कदापि च ॥ १२७ ॥

व्याहृति ही सावित्री एवं ब्राह्मणी स्वरूपा है । ब्राह्मणी गायत्री का दूषित जप कदापि न करे ॥ १२७ ॥

क्षत्राणी वैश्यदारा च शक्तिरूपा नियन्त्रिता ।
शक्तिना पूजयेत् शक्ति किमत्र दूषणं प्रिये ॥ १२८ ॥

क्षत्रियाणी एवं वैश्य की स्त्री यह तो शक्तिरूपा है । अतः शक्ति से शक्ति का पूजन करे, इसमें किसी प्रकार का भी दोष नहीं है । अतएव स्त्रियों को भी गायत्री जप का अधिकार है ॥ १२८ ॥

शृणु ध्यानं प्रवक्ष्यामि व्याहृत्या वरवर्णिनि ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां प्रतप्तकनकप्रभम् ॥ १२९ ॥
शुक्लपद्मसमासीनां शुक्लवस्त्रपरिच्छदाम् ।
दाड़िमीबीजसदृश-दशनद्युतिसृज्ज्वलाम् ॥ १३० ॥
सिन्दूरतिलकोद्दिप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम् ।
ध्यानमेतद् वरारोहे स्त्रीणां प्रति यथोचितम् ॥ १३१ ॥

हे देवि, मैं आप (महेश्वरी) से व्याहृति के ध्यान का निरूपण करता हूँ, सुनो--चार भुजा, तीन नेत्र, सुवर्ण के समान कान्तिमती, तथा श्वेत कमल के आसन पर विराजित, श्वेत वस्त्र धारण की हुई, दाड़िमी के बीज के समान चमकते हुए दाँतों से युक्त, सिन्दूर तिलक से सुशोभित, सुन्दर ललाट वाली, अञ्जन युक्त नेत्र वाली व्याहृति का ध्यान तन्त्रशास्त्र में निरूपित है । कारण कि स्त्री जाति (गायत्री व्याहृति) के लिए इस प्रकार का ध्यान उचित ही है ॥ १२९-१३१ ॥

पुरातनी पूर्णविद्या पञ्चाशद्वर्णकुण्डली ।
परस्य ब्रह्मभजनीकातरणं परकुण्डली ॥ १३२ ॥

पचास वर्णों से युक्त परब्रह्म सेव्य, अत्यन्त प्राचीन पूर्ण विद्यारूप गायत्री है ॥ १३२ ॥

अन्यथा शववत् सर्वं ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ।
कुण्डलीशक्तिरहितः शिवोऽपि शववत् सदा ॥ १३३ ॥

अन्यथा करोड़ों ब्रह्माण्ड इस कुण्डली शक्ति के बिना शव (मुर्दे) के समान है । यदि शिव भी कुण्डली शक्ति से रहित हों, तो वे शव के समान बन जाते हैं ॥ १३३ ॥

कुण्डली प्रकृतिर्या सा पञ्चाशद्वर्णविग्रहा ।
अनुस्वारस्वरूपा सा बिन्दुरूपा चिदाकृतिः ॥ १३४ ॥

कुण्डली प्रकृति पचास वर्णात्मक है । वही अनुस्वार, बिन्दु तथा चित्‌रूपा है ॥ १३४ ॥

जीवस्य वामकायेषु विप्रस्य चाऽनिशं यतः ।
अतोऽत्र कथ्यते वेदे वामकायः सदा द्विजः ॥ १३५ ॥

जीव एवं ब्राह्मण के वाम काय में यह गायत्री स्थित है । इसी लिए तो वामकायस्थित गायत्री युक्त ब्राह्मण कहा गया है ॥ १३५ ॥

वामकाये स्थिता नित्या गायत्री ब्राह्मणस्य च ।
दक्षकाये स्थिता नित्या विद्या जीवात्मिका सदा ॥ १३६ ॥

यह गायत्री ब्राह्मण के वामकाय में ही सर्वदा निवास करती है तथा जीवात्मा की विद्या ब्राह्मण के दक्षिण काय में निवास करती है ॥ १३६ ॥

वामकायः कथ्यते वै ब्राह्मणस्तेन कथ्यते ।
परब्रह्मणि जीवोऽयं प्राप्यैव च विजृम्भते ॥
ब्राह्मणः कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रसम्मतैः ॥ १३७ ॥

यह जीव परब्रह्म में लीन होता है, अतएव उसे ही वामकाय ब्राह्मण तान्त्रिक मुनियों ने कहा है ॥ १३७ ॥

देवाऽसुरैः सदा पूज्यो वामकायो हि ब्राह्मणः ॥ १३८ ॥
भिक्षावृत्तिर्भवेद् यस्य न्यायचेष्टा कदाचन ।
ब्राह्मणेभ्यो नमो नित्यं तेषां भैक्ष्येण जीविका ॥ १३९ ॥

वामकाय वाला ब्राह्मण देवता तथा दैत्य सभी का पूजनीय है । जिस ब्राह्मण की भिक्षावृत्ति के सिवा और कोई भी वृत्ति नहीं है ऐसे ब्राह्मण को नमस्कार है ॥ १३८–१३९ ॥

अष्टोत्तरसहस्राणि यज्ञानि विविधानि च ।

हे देवि, वही ब्राह्मण अष्टोत्तर सहस्र यज्ञ गायत्री के प्रत्येक अक्षर में निवास करते हैं ॥ १३९½ ॥

प्रत्येकमक्षरे भद्रे गायत्रीष्वपि विद्यते ॥ १४० ॥
एकाक्षरेऽपि विप्रस्य गायत्र्या अपि पार्वति ।

गायत्री के एक अक्षर को जानने वाले ब्राह्मण को नमस्कार है ॥ १४० ॥

नमो भवति नीलाक्ष स मुक्तः सर्वदा द्विजः ॥ १४१ ॥
संपूज्य सर्वदेवानां मम पूज्यो न संशयः ।

हे पार्वति, वही ब्राह्मण अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त करता है । तथा वह समस्त देवों का तथा मेरा भी पूज्य होता है ॥ १४१ ॥

सङ्केतमागमं शास्त्रं परब्रह्मनिरूपणम् ।
पञ्चाशन्मातृकावर्णमागमं प्रकृतिः स्वयम् ॥ १४२ ॥

परब्रह्म निरूपण का संकेत जिस ग्रन्थ में किया जाय, उसी का नाम आगम शास्त्र है । और वही (आगम) पचा॰ मातृका से युक्त स्वयं प्रकृतिरूपा है ॥ १४२ ॥

या नित्या ब्रह्मगायत्री सैव गङ्गा न संशयः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा तेन गङ्गा प्रकीर्तिता ॥ १४३ ॥

वही ब्रह्मगायत्री निस्सन्देह गङ्गा-स्वरूपा है । जिस प्रकार गङ्गा में समस्ततीर्थ विद्यमान हैं । उसी प्रकार गायत्री में सभी तीर्थ आदि निवास करते हैं ॥ १४३ ॥

सर्वशास्त्रमयी गीता गायत्री सैव निश्चिता ।
यागतीर्थञ्च गोलोकं गायत्रीरूपमद्भुतम् ॥ १४४ ॥

यह गायत्री ही सकल शास्त्रमयी गीता-स्वरूपा है । और याग, तीर्थ, गोलोक आदि इसो गायित्री का स्वरूप है ॥ १४४ ॥

बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्माण्डं कोटि-कोटिशः ।
ब्रह्मविद्यामयं सव नाऽन्यथा वचनं मम ॥ १४५ ॥

अधिक क्या कहें, यह समस्त ब्रह्माण्ड अर्थात् कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड ब्रह्म-विद्यामय है ॥ १४५ ॥

गायत्रीरहितो विप्रः स एव पूर्वकुक्कुरः ।
शतजन्मन्यस्रक् भुक्त्वा प्रतिजन्मनि ब्राह्मणः ॥ १४६ ॥
शतान्ते ब्राह्मणो भूत्वा पूतिगन्धमयं मुखम् ।
कुक्कुरत्वं परित्यज्य द्विजत्वं जायते ततः ॥ १४७ ॥

गायत्री मन्त्र से रहित ब्राह्मण प्रत्येक जन्म में कुक्कुर होकर हड्डी खाता है । वही ब्राह्मण दुर्गन्धमय मुख वाले कुक्कुर योनि का परित्याग कर सौ जन्म में पुनः ब्राह्मण योनि प्राप्त करता है ॥ १४६-१४७ ॥

गायत्रीष्वपि चार्वङ्गि अधिकारी भवेत्ततः ॥ १४८ ॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कुण्डली बिन्दुरूपिणी ।
सृष्टिस्तत्र कृतिर्नाम विद्या सङ्केतकुण्डली ।
सृष्टौ प्रकृष्टा सा विद्या प्रकृतिस्तेन कीर्तिता ॥ १४९ ॥

उसके बाद उस ब्राह्मण का गायत्री में अधिकार होता है । प्रकृति पद में 'प्र' का अर्थ प्रकृष्ट है, और बिन्दुरूपा कुण्डली है । और 'कृति' का अर्थ सृष्टि है । सृष्टि में वह विद्या 'प्रकृष्ट' है, इसी से तो उसे प्रकृति कहते हैं ॥१४८-१४९॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवज्योतिः कुण्डली सङ्गता सदा ॥ १५० ॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव और उसके बाद शिव ज्योतिः-स्वरूपा कुण्डली संगत होती है ॥ १५० ॥

सङ्केतं कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ।
ककारः कुण्डली साक्षात् पञ्चाशन्मातृकात्मिका ॥ १५१ ॥

इसी से तो उसे तान्त्रिक मुनियों ने सङ्केत इस प्रकार कहा है । पञ्चाशत् मातृकात्मिका कुण्डली ही ककार का स्वरूप है ॥ १५१ ॥

सङ्केतविद्या गायत्री परब्रह्मनिरूपणे ।
कुण्डली ब्रह्मसङ्केतः सङ्केतात् प्राप्यते परम् ॥ १५२ ॥

परब्रह्म के निरूपण में संकेत विद्या गायत्री ही कुण्डली है । उसी से ब्रह्म का संकेत होता है । और उस संकेत से परम फल प्राप्त होता है ॥ १५२॥

पञ्चाशन्मातृका शक्तिर्ज्ञानमालेति कीर्तिता ॥ १५३ ॥
गायत्री विस्मृतिर्यस्य सम्पूर्णमेकमक्षरम् ।
सहजानन्दमन्दिरे प्रभवेदात्मनः स्थितिः ॥ १५४ ॥
शुद्धसत्त्वात्मकः सैव कला श्री अन्तरात्मनः ।
एवमात्मा परिच्छिन्नः प्रजपेदनिशं मनुम् ॥ १५५ ॥

वित्तस्य लालसां कृत्वा कर्णपूरे न्यसेन्मनुम् ।
स यथा नरकं याति शिष्येण सह रौरवम् ।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव नरकं व्रजेत् ॥ १५६ ॥

पञ्चाशत् मातृका शक्ति को ही ज्ञानमाला कहते हैं । गायत्री का एक अक्षर अथवा समस्त गायत्री जिसे विस्मृत हो जाती है वह आनन्द-मन्दिर में आत्म-स्थिति कर लेता है । वही शुद्ध सत्त्वात्मक अन्तरात्मा को कला है । इसी प्रकार परिच्छिन्न आत्मा निरन्तर मनु का जप करे । और धन की लालसा कर मनु को कर्ण के पूर में स्थापित करे । ऐसा गुरु जिस प्रकार अपने शिष्यों के सहित नरकगामी होता है, उसी प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण नरकगामी होता है ॥ १५३-१५६ ॥

यदन्नं ब्राह्मणोद्देशे पच्यते च द्विजातिभिः ॥ १५७ ॥
शूद्राणां यदि तत्रान्ने जायते वरवर्णिनि ।
शूद्रोच्छिष्टं भवेदन्नं विष्णवे न निवेदयेत् ॥ १५८ ॥
तदन्नं विष्णवे दत्त्वा शूद्रेण सह रौरवम् ।
यथा स नरकं याति गायत्रीरहितस्तथा ॥ १५९ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ब्राह्मण को उद्देश्य कर जो अन्न पकाते हैं उसमें यदि शूद्र के अन्न का संसर्ग हो जाय तो वह अन्न शूद्रोच्छिष्ट कहलाता है । इस प्रकार शूद्रोच्छिष्ट अन्न विष्णु को कदापि समर्पित न करे । वह अन्न विष्णु को प्रदान करने से वह ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्र के साथ उसी प्रकार रौरव नरक का भागी होता है, जिस प्रकार गायत्रीरहित ब्राह्मण ॥ १५७-१५९ ॥

विष्णोर्निवेदितमन्नमज्ञानात् शूद्रजातिषु ।
दत्त्वा नरकमाप्नोति गायत्रीरहितस्तथा ॥ १६० ॥

विष्णुप्रदत्त अन्न यदि कोई शूद्र जाति में प्रदान करता है, तो वह उसी प्रकार नरक का भागी होता है जिस प्रकार गायत्री रहित ब्राह्मण ॥ १६० ॥

सर्वं तस्य वृथा देवि कृष्णपूजादिकाः क्रियाः ॥ १६१ ॥
गायत्र्यात्मकजीवात्मा पूजको नाऽन्य एव हि ।

ऐसे मनुष्य की की हुई कृष्ण आदि देवताओं की पूजा व्यर्थ हो जाती है । देवताओं की सेवा करने का अधिकार गायत्री से युक्त जीवात्मा को ही है ॥ १६१ ॥

पूजकस्य तथा पूज्याः शक्ति-विष्णु-शिवादयः ।
गायत्रीरहितो विप्रो न स्पृशेत् तुलसीदलम् ॥ १६२ ॥

शक्ति, विष्णु और शिव आदि देवगण पूजक के भी पूज्य हैं, अतः गायत्री विहीन ब्राह्मण देवताओं का तथा तुलसी दल का स्पर्श न करे ॥ १६२ ॥

हरेर्नाम न गृह्णीयाद् गायत्रीरहितो द्विजः ।
महाचाण्डालसदृशः किं तस्य विष्णुपूजने ॥ १६३ ॥

महाचाण्डाल के समान गायत्री रहित ब्राह्मण होता है । ऐसे ब्राह्मण को हरि का नाम भी नहीं लेना चाहिए, तो भला पूजन का तो कहना ही क्या ॥ १६३ ॥

मन्त्रत्यागी गुरुत्यागी देवत्यागी तथैव च ।
दुरदृष्टवशाद्दैवाद् यस्य वंशे प्रजायते ॥ १६४ ॥
स गोत्रबान्धवस्तस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
कुशपत्रशतैः सार्द्धैर्निर्माय कुशपुत्तलीम् ॥ १६५ ॥
वेदोक्तविधिना तस्य ह्यग्निदाहं समाचरेत् ।
अन्यथा तस्य यत् पापं न, गोत्रेषु विशेद् द्रुतम् ॥ १६६ ॥

जिसके कुल से दुर्दैव वश मन्त्र त्याग वाला, गुरु को त्याग करने वाला प्राणि उत्पन्न होता है, तो उसके कुल गोत्र वाले मनुष्य को चाहिए कि उसका प्रायश्चित्त करे । सौ कुशा का पुत्तल बना कर वैदिक विधान से उसका अग्नि-संस्कार (अर्थात् जला दे) अन्यथा उस का पाप कुल वालों को भोगना पड़ता है ॥ १६४-१६६ ॥

तत्संसर्गिणो ये लोकास्तेऽपि तद्दोषभागिनः ।
स पापी वर्द्धते नित्यं कलिकाल-विशेषतः ॥ १६७ ॥

ऐसे लोगों के साथ सम्बन्ध रखने वाले मनुष्य भी उसी दोष के भागी होते हैं । कलि के प्रभाव से ऐसा पुरुष पातकी वृद्धिगत होता है तथा सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है ॥ १६७ ॥

स गोत्रस्तस्य संसर्गी महादरिद्रतां व्रजेत् ।
परे च नरकं गत्वा कुरुते पापसञ्चयम् ॥ १६८ ॥

ऐसे पातकी के संसर्ग भी महा दरिद्रता के भागी होते हैं तथा पाप बटोरते-बटोरते नरक के भागी होते हैं ॥ १६८ ॥

पञ्चपातकसंयुक्तः स यथा ब्राह्मणाद्गतः ।
गायत्रीरहितस्यापि इममेव सुनिश्चिता ॥ १६९ ॥

जिस प्रकार वह चाण्डाल ब्राह्मण अपना ब्रह्मत्व खोकर पञ्च महापातक से युक्त होता है, उसी प्रकार गायत्री रहित ब्राह्मण भी होता है । यह निश्चित है ॥ १६९ ॥

अशौचान्तदिने विप्रो गत्वा शूद्रगृहं यदि ।
भुक्ता गृहीत्वा तद् द्रव्यं तत्क्षणाद् याति शूद्रताम् ॥१७०॥

जो ब्राह्मण शूद्र के घर जाकर अशौच के बाद भी अन्न आदि ग्रहण करता है, तो वह उसी समय शूद्र हो जाता है ॥ १७० ॥

प्रेतोद्देशे च यद् द्रव्यं तत्र यस्य स्पृहा भवेत् ।
तद्दिने स भवेच्छूद्रो गायत्रीरहितो यथा ॥ १७१ ॥
तद्दिने तद्गृहं गत्वा यदि गङ्गोदकं पिबेत् ।
तथापि स भवेत् शूद्रो गायत्रीरहितो यथा ॥ १७२ ॥

यदि कोई ब्राह्मण प्रेतसम्बन्धी द्रव्य ग्रहण करने की इच्छा रखता है, तो वह गायत्री-रहित ब्राह्मण के समान उसी समय शूद्रवत् हो जाता है। यदि वह अपनी शुद्धि के लिए गङ्गाजल का पान भी करता है तब भी वह शूद्र ही रहता है। उस की शुद्धि नहीं होती है ॥ १७१-१७२ ॥

यथा दर्दुरिकः कुष्ठी सर्वशास्त्रबहिर्मुखः ।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथा धर्मबहिर्मुखः ॥ १७३ ॥

जिस प्रकार कोढ़ी तथा शास्त्रज्ञानहीन मनुष्य अत्यन्त घृणित एवं पतित होता है, उसी प्रकार गायत्री रहित ब्राह्मण होता है ॥ १७३ ॥

वरं पूजा प्रकर्तव्या ब्राह्मणे व्यक्तनास्तिके ।
नित्यं दर्दुरिको विप्रः सर्वपूजाबहिर्मुखः ॥ १७४ ॥
गायत्रीमयुतं जप्त्वा तद्धनं वेदपारगे ।
दत्त्वा शुद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा शूद्रवत् सदा ॥ १७५ ॥

जो ऐसे ब्राह्मण का पूजन करता है वह किसी के भी पूजन का अधिकारी नहीं होता एवं मेंढक होता है। अर्थात् मेंढक के समान नित्य बड़बड़ाया (टर्राया) करता है। ऐसा पातकी (ब्राह्मण) तभी शुद्ध हो सकता है जब वह अयुत गायत्री का जप कर वेदपाठी ब्राह्मण का धन से सत्कार करे। अन्यथा वह शूद्र के समान होता है ॥ १७४-१७५ ॥

तत्त्वमेतन्महागुह्यं पूर्वाद्याम्नायसंयुतम् ।
ऊर्ध्वाम्नाययुतं तन्त्रं दक्षिणाम्नायसंयुतम् ॥ १७६ ॥

इस तत्त्व का निरूपण पूर्वाम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय एवं दक्षिणाम्नाय तन्त्र में भली भाँति किया गया है। अतः यह तत्त्व अत्यन्त गुप्त है ॥ १७६ ॥

श्रुत्वा शूद्रमुखाद्व्याख्यां शूद्रस्थाने पठेद् द्विजः ॥ १७७ ॥

जो ब्राह्मण शूद्र के मुख से गायत्री का व्याख्यान सुनता है तथा शूद्र के घर जाकर गायत्री जप अथवा वेद पाठ करता है ॥ १७७ ॥

तत्क्षणात् स भवेत् शूद्रो गात्रीरहितो यथा ।
स शूद्रः कृतचाण्डाल इह जन्मनि निश्चयः ॥ १७८ ॥
कुलविंशतिमादाय अन्ते स नरकं व्रजेत् ।
यस्तु अध्यापकः शूद्रः स कथं धर्मतत्परः ॥ १७९ ॥
तस्य सर्वं भवेद्व्यर्थं हरिनामादिकञ्च यत् ।
स सर्वयातनाभोगी यावदाहूतसंप्लवम् ॥ १८० ॥
पञ्चपातकसंयुक्तः कृतघ्नश्चैव निश्चितः ।
यस्तीर्थे मूत्रविट् कृत्वा यदि दैवाच्च एकदा ॥ १८१ ॥

वह गायत्री रहित ब्राह्मण के समान शूद्र एवं चाण्डाल होता है और जन्म-जन्मान्तर में उसी रूप में रहता है तथा अपने साथ बीस पीढ़ी तक को नरक में ले जाता है। कहीं अध्यापक यदि शूद्र हो तो वह धर्मात्मा किस प्रकार हो सकता है अर्थात् धर्म कार्य में तत्पर नहीं हो सकता। उसके मुख से निकला (उचारण किया) हुआ हरिनामादि सभी व्यर्थ है। ऐसा शूद्र अध्यापक जन्म-जन्मान्तर में प्रलय काल पर्यन्त समस्त यातनाओं का उपभोग करता रहता है। तथा पञ्चमहापातक से युक्त वह निश्चित कृतघ्नी होता है एवं जो तीर्थ स्थानों में टट्टी, पेशाब करता है ॥ १७८-१८१ ॥

तत्क्षणात् तत्फलं त्यक्त्वा स यथा पितृभिः सह ।
स यथा रौरवं याति गायत्रीरहितस्तथा ॥ १८२ ॥

वह अपने समस्त पितरों के साथ गायत्री रहित ब्राह्मण के समान रौरव नरक में जाता है ॥ १८२॥

ये तीर्थवासिनो लोकास्तीर्थे मूत्रं प्रकुर्वते ।
स्नानपूजाफलं त्यक्त्वा स यथा नरकं व्रजेत् ॥ १८३ ॥
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव नरकं व्रजेत् ।
पतङ्गादेर्यथारामस्तथैव तीर्थवासिनः ॥ १८४ ॥

इत्यागमसन्दर्भे ज्ञानदर्शने देवदेवीसंवादे गायत्रीतन्त्रे तृतीयो ब्राह्मणपटलः ।

जो तीर्थ निवासी जन तीर्थ स्थान में मूत्र त्याग करते हैं। वे कीट, पतङ्ग के समान स्नान तथा पूजा के पुण्य से रहित गायत्री रहित ब्राह्मण के समान रौरव नरक में जाते हैं ॥ १८३-१८४ ॥

इस प्रकार आगम सन्दर्भ ज्ञानदर्शन में पण्डित शिवदत्तमिश्रशास्त्रि कृत 'तत्त्वदीपिका' हिन्दीटीका सहित गायत्रीतन्त्र में देवदेवी-संवाद रूप तृतीय ब्राह्मण पटल समाप्त ॥ ३ ॥

—:—

चतुर्थः पटलः

श्रीदेव उवाच —

ह्रीं आगच्छ वरदे नित्ये परागधूलिधूसरे ।
मकरन्दरसामोदे परंब्रह्मसुखास्पदे ॥ १ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—पराग की धूलि से धूसरित, मकरन्द के रस से ओतप्रोत, परब्रह्म सुख स्थान स्थित हे नित्य वरदायिनी माता, आप आइए ॥ १ ॥

चन्द्रमण्डलमध्यस्थशिवपर्यङ्कशायिनि ।
ब्रह्मविष्णुशिवान्तःस्थे सुषुम्नामध्यवर्तिनि ॥ २ ॥

आप चन्द्रमण्डल में निवास करने वाली तथा शिव के पर्यङ्क में शयन करने वाली हैं। और आप ब्रह्मा, विष्णु, शिव के हृदय में निवास करने वाली तथा सुषुम्ना नाड़ी के मध्य निवास करने वाली हैं ॥ २ ॥

पञ्चाशद्युवतीसङ्गे महाबिन्दुस्वरूपिणि ।
आगच्छ त्वरितं मातस्त्वं बिन्दुचन्द्रमण्डलात् ॥ ३ ॥

और आप पचास युवतियों के संग निवास करने वाली, महा बिन्दुरूपा हे माता, आप चन्द्रमण्डल से आइए ॥ ३ ॥

आगत्य हृदयस्थानं विद्यासिद्धिं प्रयच्छ मे ।
ह्रीं ध्यात्वा विद्यां महेशानि ध्यायेद् यत्नेन देवताम् ॥ ४ ॥
प्रथमस्य च बीजस्य मन्त्राणां ध्यानमेव च ।
ततस्तु पूजयेद् विद्यां यावद्वर्णानि तानि च ॥ ५ ॥

आप मेरे हृदय में निवास कर मुझे विद्या सिद्धि प्रदान कीजिए। इस प्रकार महेश्वरी देवी का अत्यन्त यत्नपूर्वक ध्यान करे। सर्वप्रथम मन्त्रों का बीज तथा ध्यान करे। तदनन्तर गायत्री के जितने वर्ण हैं उन सभी का पूजन करे ॥ ४-५ ॥

आद्यन्ते प्रणवं दत्त्वा प्रतिवर्णं पृथक् पृथक् ।
चतुर्थ्यन्तं नमोऽन्ते च जपादौ पूजयेत् सुधीः ॥ ६ ॥

गायत्री के आदि तथा अन्त में प्रणव का उच्चारण कर, गायत्री के प्रति वर्ण के चतुर्थ्यन्त प्रयोग के साथ 'नमः' इस प्रकार कह कर जप करने के पूर्व पूजन करे ॥ ६ ॥

ततस्तु पूजयेद् विद्वान् जप्त्वा विसर्जनं ततः ।
ह्रीं गच्छ देवि महामाये महाबिन्दुस्वरूपिणि ॥ ७ ॥
गच्छ देवि फलं दत्त्वा त्वं विष्णुश्चन्द्रमण्डलात् ।
जीवात्मनि सदा तिष्ठ तिष्ठ त्वं सुस्थिरा भव ॥ ८ ॥

तदनन्तर गायत्री का जप करे और बाद में इस प्रकार कहकर कि महामाया महाविन्दुरूपा गायत्री, आप मुझे अभीष्ट फल प्रदान कर, अपने वासस्थान चन्द्रमण्डल से जीवात्मा में स्थिर हों ॥ ७-८ ॥

ह्रीं ततः समर्पयेन्मन्त्रं पूर्वोक्तपटले यथा ।
पूजितानि सदा विद्ये जीवात्मा पूजितेऽक्षरे ॥
परंब्रह्म पूजिताऽसि जीवात्मनि स्थिरा भव ॥ ९ ॥

उसके बाद जीवात्मा में स्थित प्रतिवर्ण पूजित गायत्री का पूर्वोक्त पटल में समर्पित करे। आप परब्रह्म से पूजित हैं, आप जीवात्मा में स्थित हों ॥ ९ ॥

ह्रीं शाक्ते शैवे वैष्णवे च सौरे गाणपतेषु च ।
सर्वमन्त्रेषु विद्यासु शस्यते नाऽन्यथा भवेत् ॥ १० ॥
एतद्रहस्यं परममज्ञात्वा विफलं जपम् ॥ ११ ॥

यह गायत्री मन्त्र शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर एवं गाणपत्य आदि मन्त्रों में पहले इस गायत्री का जप करे अर्थात् यह समस्त मन्त्रों में प्रशंसित है और कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इस रहस्य को जाने विना जो जप करता है उस का जप निष्फल हो जाता है ॥ १०-११ ॥

चन्द्राग्रे वसते जीवः सुस्थिरो मनसा सह ।
सदाशिवपुराद् विद्या आगता ऐश्वरं पुरम् ॥ १२ ॥
तस्यैवावाहनं भद्रे कथ्यते तन्त्रकोविदैः ।
ईश्वराद् याति सा विद्या पुनः शिवपुरं प्रति ॥ १३ ॥
तदा विसर्जनं भद्रे कथ्यते मुनिपुङ्गवैः ।
मन्त्राक्षराणि यावन्ति आत्मन्येवार्पणं भवेत् ॥ १४ ॥

यह जीव मन के साथ स्थिर होकर चन्द्रमण्डल के अग्र भाग में रहता है। जब वह विद्या सदाशिव नगर (कैलास) से ऐश्वरपुर में आती है उसी को तान्त्रिक लोग आवाहन कहते हैं। और जब वह विद्या ईश्वरपुर से पुनः कैलाश जाती है उसी को मुनि लोग विसर्जन कहते हैं। गायत्री मन्त्र के जितने भी वर्ण हैं, उन सभी को आत्मा में समर्पित करे ॥ १२-१४ ॥

समर्पणं कथ्यते तैर्मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः ।
सम्यक्प्रकारभावेन अर्पणं यत् समर्पणम् ॥ १५ ॥

अच्छी प्रकार गायत्री के वर्णों का आत्मा में अर्पण करना ही समर्पण कहा जाता है ॥ १५ ॥

तदैवात्मनि निर्णीतमिति वेदेषु निर्णयम् ।
आधाराचन्द्रपर्यन्तं सुषुम्नावर्त्मनानिशम् ॥ १६ ॥
आयाति याति सा विद्या इति वेदेषु निश्चिता ।
मन्त्राणां चिन्तनाद् देवि स मनुर्देवता स्वयम् ॥ १७ ॥

इसीलिए तो आत्मा में ही समर्पण होता है, इस प्रकार वेदों में कहा गया है। और वह विद्या सुषुम्ना मार्ग से निरन्तर आधार से चन्द्रमण्डल पर्यन्त आती-जाती रहती है। मन्त्रों के चिन्तन करने से जापक स्वयं मनु बन जाता है ॥ १६-१७ ॥

ध्यानेन दर्शनं दत्त्वा पुनर्मन्त्रेषु लीयते ।
एवं पुनः पुनर्मन्त्रं देवता च पुनः पुनः ॥ १८ ॥
आविर्भाव-तिरोभावो जायते स मनुः स्वयम् ।
ध्यानस्यान्तर्गतं मन्त्रं ध्यानकाले विशेषतः ॥ १९ ॥
मनश्चान्तर्गतं मन्त्रं जपकाले तथैव च ।
मनसा चिन्तनं ध्यानं तेन ध्यानं प्रकीर्तितम् ॥ २० ॥

जिस जापक के चित्त में ध्यान से दर्शन होता है तथा पुनः वह मन्त्रों में लीन हो जाता है। इस प्रकार कभी देवता व कभी मन्त्र का चित्त में ध्यान से साक्षात्कार करता रहता है। तथा उन मन्त्रों के आविर्भाव एवं तिरोभाव का ध्यान करता रहता है, फिर वह स्वयं मनु बन जाता है। क्योंकि ध्यान के समय मन्त्र उसके अन्तर्गत रहता है। तथा जप के समय वह मन्त्र मन के अन्तर्गत रहता है। तथा मन से चिन्तन करने को ही ध्यान कहते हैं ॥ १८-२० ॥

चिन्तनं देवतारूपं त्रिगुणं प्रति अक्षरम् ।
ब्राह्मण-क्षत्र-वैश्याश्च शूद्राद्यावरजातयः ॥ २१ ॥
स्त्रियश्च सकलास्तेषां शान्तरूपाः सदा शुचि ।
एषां मध्ये च या काचिदागत्य गुरुसन्निधिम् ॥ २२ ॥
प्रणम्य प्रार्थयेज्ज्ञानं धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षदम् ।
यदि न दीयते ज्ञानं तस्य ज्ञानविशारदैः ॥ २३ ॥
ते यथा नरकं यान्ति गायत्रीरहितास्तथा ।
ब्रह्मज्ञानमयं ह्येतन्नास्ति जातिविचारणा ॥ २४ ॥

सत्त्व, रज, तम त्रिगुणात्मक देवता रूप अक्षर का चिन्तन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अवर जाति एवं स्त्रियाँ ये सभी यदि उपदेशक के पास आकर उन्हें प्रणाम कर गायत्री मन्त्र ज्ञान के लिए प्रार्थना करें तो उपदेशक को चाहिए कि वह उन्हें गायत्री मन्त्र का उपदेश दे। इस प्रकार नहीं करने पर वह गायत्री रहित ब्राह्मण के समान नरक का भागी होता है। यह गायत्री मन्त्र ब्रह्मज्ञानमय है—इसमें जाति का विचार नहीं करना चाहिए ॥ २१-२४ ॥

ज्ञानिने दीयते ज्ञानं ज्ञानिने कमलेक्षणे ।
पञ्चाशन्मातृकावर्णज्ञानं ज्ञानविदो विदुः ॥ २५ ॥

यह पचास मातृका वर्ण का ज्ञान ही ज्ञानियों के लिए ज्ञानस्वरूप है। इस प्रकार ज्ञानविदों ने कहा है ॥ २५ ॥

श्रीदेव्युवाच—

कन्या च कर्तयेत् सूत्रं पतिपुत्रवती तथा ।
विधवा सधवा वाऽपि पुत्रहीनाऽपि ब्राह्मणी ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् पार्वती जी ने कहा कि पति-पुत्र वाली एवं कन्या तथा सधवा और विधवा चाहे वह पुत्र हीन ही क्यों न हो यज्ञोपवीत के लिए सूत कात सकती हैं ॥ २६ ॥

क्षत्राणी वैश्यदारा च कर्तयेन्न च शूद्रिणी ।
दीक्षिता यदि सा भद्रे शूद्रिणी न च निन्दिता ॥ २७ ॥

क्षत्रिय एवं वैश्य की स्त्रियाँ भी कात सकती हैं, किन्तु शूद्र की स्त्री कभी भी नहीं कात सकती। यदि शूद्रिणी दीक्षित हो तो वह भी यज्ञोपवीत निमित्त सूत कात सकती है ॥ २७ ॥

सच्छूद्रा यदि सा भद्रे शुद्धा सा सूत्रकर्तने ।
असच्छूद्रा महेशानि निन्दिता सूत्रकर्तने ॥ २८ ॥

शूद्र की स्त्री दीक्षित होने पर ही सूत कात सकती है और अदीक्षित होने पर नहीं कात सकती ॥ २८ ॥

कार्पाससम्भवैः सूत्रैर्यज्ञसूत्रं विनिर्मितम् ।
सूक्ष्माऽतिसूक्ष्मं परमं जम्बुद्वीपे विशेषतः ॥ २९ ॥

कपास के सूत का यज्ञोपवीत बनाना चाहिए। जम्बूद्वीप में महीन से महीन जनेऊ बनाया जाता है ॥ २९ ॥

ग्रन्थिकाले स्मरेद् विप्रान् सूत्रो भवति मूर्तिमान् ।
ब्रह्मा च कश्यपो विप्रः सनकोऽथ सनन्दकः ॥ ३० ॥

मूर्तिमान् यज्ञोपवीत में ग्रन्थि लगाते समय ब्रह्मा, कश्यप, सनक, सनन्दन, ॥ ३० ॥

सनत् सनातनो विप्रो नारदः कपिलस्तथा ।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यो गौतमः क्रतुः ॥ ३१ ॥

सनत्, सनातन, नारद, कपिल, मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, गौतम, क्रतु, ॥ ३१ ॥

भृगुर्दक्षः प्रचेताश्च वशिष्ठो वाल्मीकिस्तथा ।
द्वैपायनो भरद्वाजः शुको जैमिनिरेव च ॥ ३२ ॥

भृगु, दक्ष प्रजापति, प्रचेता, वशिष्ठ, वाल्मीकि, द्वैपायन, भरद्वाज, शुक, जैमिनि, ॥ ३२ ॥

विदूरश्च शुनःशेफो जातुकर्णश्च रौरवः ।
और्वः संवर्तकः शुक्रश्चयवनोऽथ बृहस्पतिः ॥ ३३ ॥

विदूर एवं शुनःशेप, जातुकर्ण, रौरव, और्व, संवर्त्तक, शुक्र, च्यवन, बृहस्पति, ॥ ३३ ॥

चन्द्रः सूर्यो बुधः श्रीमान् यज्ञसूत्रस्य ग्रन्थिषु ।
तिष्ठन्तु मम वामांशे वामस्कन्धे ह्यहर्निशम् ॥ ३४ ॥

चन्द्र, सूर्य और बुध आदि देवता एवं ऋषियों का ध्यान करे । और उनसे प्रार्थना करे कि, आप सभी मेरे बाँयें कन्धे पर निरन्तर निवास करें ॥ ३४ ॥

गायत्री अजपारूपा रूपादितत्त्वरूपिणी ।
तिष्ठतु मम वामांशे वामस्कन्धे ह्यहर्निशम् ॥ ३५ ॥

रूपादि तत्वस्वरूपा अजपा गायत्री मेरे बाँयें कन्धे पर निरन्तर निवास करे ॥ ३५ ॥

अत्र देवस्य सूत्रस्य देवाचार्यो बृहस्पतिः ।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे यज्ञसूत्रस्य देवताः ॥ ३६ ॥

इस यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) के देवता ब्रह्मा आदि तथा देवताओं के आचार्य बृहस्पति हैं ॥ ३६ ॥

संमार्ज्य दधिदुग्धेन घृतेन बहुयत्नतः ।
घृताद्यभावे चार्वङ्गि मार्जयेत्तण्डुलपिण्डजैः ॥ ३७ ॥
तदभावे सार्षपेण तिलतैलं परित्यजेत् ।
बिल्वस्य फलनिर्यासैर्मार्जयेत् सततं द्विजः ॥ ३८ ।

इस यज्ञोपवीत का दूध, दही, घी से मार्जन करे । तथा घी यदि न हो तो चावल के पिण्ड से और चावल के पिण्ड के अभाव में सरसों के तेल से मार्जन करे । परन्तु तिल के तेल से कभी भी मार्जन न करे । एवं बेल से निरन्तर मार्जन करे ॥ ३७-३८ ॥

वामस्कन्धात् समुत्तीर्य्य वामाङ्गुष्ठे नियोजयेत् ।
वामाङ्गुष्ठं वामस्कन्धमेक एव न चाऽन्यथा ॥ ३९ ॥

यदि यज्ञोपवीत को बाँयें कन्धे से उतारे तो उसे बायें हाथ के अँगूठे पर रखे । कारण कि बायाँ कन्धा एवं बायें हाथ का अँगूठा एक ही है ॥ ३९ ॥

वामाङ्गुष्ठयुतं सूत्रं कृत्वा संमार्जयेद् द्विजः ।
कण्ठे शिरे दक्षकरे कृत्वा शूद्रत्वमर्हति ॥ ४० ॥

यदि यज्ञोपवीत को साफ करना हो तो बाँयें हाँथ के अँगूठे पर स्थापित कर साफ करे । कण्ठ, शिर एवं दाहिने हाथ में रखकर साफ करने से ब्राह्मण भी शूद्र बन जाता है ॥ ४० ॥

गायत्रीमयुतं जप्त्वा तस्मात् पापात् प्रमुच्यते ।
शुद्धसत्त्वात्मकं सूत्रं तदा भवति प्रत्यहम् ॥ ४१ ॥

भूल से उपर्युक्त प्रकार से जनेऊ साफ करने पर अयुत जप गायत्री का करे तभी शुद्ध हो सकता है और यज्ञोपवीत भी तभी शुद्ध रहता है ॥ ४१ ॥

शुद्धसत्त्वात्मकं सूत्रं ब्राह्मणेषु प्रशस्यते ।
लोहितं क्षत्रिये शस्तं वैश्ये पीतं प्रशस्यते ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण को सफेद, क्षत्रिय को लाल तथा वैश्य को पीला जनेऊ धारण करना चाहिए ॥ ४२ ॥

वर्णविप्रे यथा भट्टे मार्जनं रहितं सदा ।
धारणं यज्ञसूत्रस्य जातिभेदे पृथक् पृथक् ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण को यज्ञोपवीत का मार्जन कभी भी नहीं करना चाहिए अर्थात् जनेऊ पर साफा नहीं देना चाहिए । जातिभेद से सब के लिए यज्ञोपवीत धारण भिन्न-भिन्न रीति से बताया गया है ॥ ४३ ॥

रक्तचन्दनतोयेन मार्जयेत् क्षत्रजातयः ।
हरिद्रया मार्जयेत् वैश्य इति सूत्रविनिर्णयः ॥ ४४ ॥

क्षत्रिय लोग यज्ञोपवीत का मार्जन रक्त चन्दन के जल से करें । उसी प्रकार हल्दी के जल से वैश्य मार्जन करें ॥ ४४ ॥

वर्णविप्रे तथा भट्टे विशेषं निगदामि ते ।
प्रथमाष्टाक्षरं भद्रे व्याहृत्याः प्रथमाक्षरम् ॥ ४५ ॥
त्रिसन्ध्यं प्रजपेद् भट्टो वर्णविप्रस्तथैव हि ।
आद्यन्ते प्रणवं त्यक्त्वा प्रजपेत् सततं यदि ।
स्वजात्युक्तफलं प्राप्य गायत्र्या फलमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मण एवं भट्ट को चाहिए कि व्याहृति के प्रथम अक्षर से आठ अक्षर तक तीन काल, अर्थात् प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल जप करे । यदि आदि, अन्त में प्रणव का परित्याग कर जप करे तो वह अपने जात्युक्त फल प्राप्त कर गायत्री का फल प्राप्त कर सकता है ॥ ४५–४६ ॥

देव्युवाच—

प्रजपेदनिशं ह्यात्मा तुरीयां ब्रह्मसंपदम्।
प्रजपेदनिशं ह्यात्मा चात्मीयं ब्राह्मणः प्रभो ॥ ४७ ॥
गायत्री या महादेव तुरीया सैव नान्यथा।
तुरीया सैव गायत्री नित्यमेकत्र संस्थितिः ॥ ४८ ॥
उभयोरेकयोगेन प्रजपेदथवा पृथक्।
इति मे संशयं देव भञ्जनं कुरु यत्नतः ॥ ४९ ॥

पार्वती ने कहा कि हे प्रभो, ब्रह्म सम्पत्तिरूप गायत्री या तुरीया का जप करे। कारण कि गायत्री और तुरीया दोनों एक ही है। जब कि तुरीया और गायत्री एक ही है तो आप बताइए कि गायत्री अथवा तुरीया का पृथक्-पृथक् जप करे अथवा एक साथ जप करे ? इस सन्देह की निवृत्ति करने का आप कष्ट करें ॥ ४७-४९ ॥

श्रीदेव उवाच—

बिन्दुमध्यगता नित्या गायत्री परदेवता।
चतुर्विन्द्वात्मकं हंसं गायत्रीषु प्रतिष्ठितम् ॥ ५० ॥

श्री महादेव जी ने कहा कि यह गायत्री बिन्दु के मध्य में स्थित है। इस गायत्री में चतुबिन्दुस्वरूप हंस प्रतिष्ठित है ॥ ५० ॥

नकारान्ते स्थितं शून्यं ज्योत्स्नाशक्तिसमन्वितम्।
सकारान्ते स्थिता शक्तिः पिनाकिसहिता सदा ॥ ५१ ॥

नकार के अन्त में स्थित जो शून्य है, वह ज्योत्स्ना शक्ति से युक्त है। उसी प्रकार सकार के अन्त में पिनाक सहित स्थित है ॥ ५१ ॥

वकारान्ते द्वयं बिन्दुं स्वकारान्ते द्वयं तथा।
शिवशक्त्यात्मकं हंसं गायत्री स्त्रीपुरुषात्मिका ॥ ५२ ॥

इसी प्रकार वकार तथा स्व के अन्त में जो दो बिन्दु (विसर्ग) है वह स्त्री-पुरुषात्मिका शिव शक्तिरूप हंस है ॥ ५२ ॥

व्याहृतिः शोभिता तस्य बिन्दुना वरवर्णिनी।
जपकाले महेशानि जायते श्वासबन्धनम् ॥ ५३ ॥

उसी बिन्दु से गायत्री सुशोभित है। इसीलिए तो हे महेश्वरी, उस गायत्री के जप काल में श्वांस का बन्धन होता है ॥ ५३ ॥

यत्र यत्र विनिर्दिष्टं विद्यामन्त्रं प्रसन्नधीः।
सर्वं हंसमयं भद्रे नास्ति हंसात् परं मनुः ॥ ५४ ॥

यही विद्या मन्त्र है, तथा सभी हंसरूप है—कारण कि हंस से परे कुछ भी नहीं है ॥ ५४ ॥

जीवन्यासं प्रवक्ष्यामि यज्ञसूत्रस्य संशृणु।
यज्ञसूत्रं करे धृत्वा दक्षिणे द्विजसत्तमः ॥ ५५ ॥
गायत्रीं प्रथमे उक्त्वा प्रणवं प्रजपेत् शतम्।
आं ह्रीं इति उच्चार्य्य प्रणवादीनुच्चरेत्ततः ॥ ५६ ॥

महादेवजी ने कहा कि हे देवि, अब यहाँ से यज्ञोपवीत के जीवन्यास का निरूपण करता हूँ, उसे सावधान मन से श्रवण करो। जीवन्यास करने के लिए ब्राह्मण को चाहिए कि वह यज्ञोपवीत को दाहिने हाथ में रखकर पहले गायत्री पढ़ कर सौ बार प्रणव (ॐ) का जप करे। पहले आं 'ह्रीं' कहकर बाद में प्रणव का उच्चारण करे ॥ ५५-५६ ॥

यज्ञसूत्रस्य वाङ्मनोनयनं तदनन्तरम्।
गायत्रीं पुनरुक्त्वा च वामस्कन्धे निधापयेत् ॥ ५७ ॥

उसके बाद यज्ञोपवीत में वाणी और मन का प्राकट्य करे। पुनः गायत्री का उच्चारण कर यज्ञोपवीत को बाँये कन्धे पर धारण करे ॥ ५७ ॥

जीवन्यासं विना देवि यज्ञसूत्रञ्च सूत्रवत्।
शिवपूजनमत्याज्यं जातके मृतके तथा ॥ ५८ ॥

हे देवि, जीवन्यास किये बिना अन्य सूत्र के समान यज्ञोपवीत होता है। अर्थात् बेकार हो जाता है। जननाशौच एवं मरणाशौच में शिवपूजन अत्याज्य है ॥ ५८ ॥

ब्रह्मविद्या च अत्याज्या गायत्री मृतसूतके।
कारागारान्विते ग्रामे यः पूजयति शङ्करम् ॥ ५९ ॥
शङ्करं त्रिदशाराध्यमम्बिकां सुरपूजिता।
यथा तस्य वृथा पूजा यज्ञसूत्रं तथैव च ॥ ६० ॥

उसी प्रकार अशौच में भी ब्रह्मविद्या गायत्री का त्याग नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार कारागार से युक्त ग्राम में समस्त देवताओं के आराध्य शंकर पार्वतीका पूजन व्यर्थ होता है, उसी प्रकार जीवन्यास किये बिना यज्ञोपवीत धारण व्यर्थ होता है ॥ ५९-६० ॥

पञ्चाधिका यत्र लोका बद्धास्तिष्ठन्ति वै गृहे।
कारागारः स विज्ञेयस्तत्र पूजां परित्यजेत् ॥ ६१ ॥

जिस स्थान में पाँच या उससे अधिक मनुष्य बद्ध रहते हैं। उस स्थान को कारागार कहते हैं। उस स्थान में पूजा नहीं करनी चाहिए ॥ ६१ ॥

यदि नो दीयते पिण्डं पित्रादीनां मृताहनि।
निषेधं कुरुते यस्तु स बौद्धो वरमूढधीः ॥ ६२ ॥

श्राद्ध के दिन जो अपने पितरों को पिण्ड प्रदान नहीं करते हैं। तथा जो पिण्ड देने का निषेध करते हैं। वे बौद्ध मतानुयायी हैं और वे अत्यन्त मूर्ख हैं ॥ ६२ ॥

मूत्र-विट्-शोणितैर्युक्ता तस्य जिह्वा यथा तथा।
गायत्रीरहितस्यापि तस्य जिह्वा च निन्दिता ॥ ६३ ॥

जिस प्रकार मूत्र, विष्ठा, शोणित से युक्त मनुष्य की जीभ निन्दित है। उसी प्रकार गायत्री से हीन मनुष्य की जीभ भी निन्दित है ॥ ६३ ॥

न विष्णुस्मरणं तस्य जिह्वयाऽपि कदाचन।
तस्य जिह्वा छुरिकया कर्तनं पापमोचनम् ॥ ६४ ॥

जिस मनुष्य की जिह्वा से विष्णु का नाम नहीं निकलता है, ऐसे मनुष्य की जीभ काट लेना ही मानो उस मनुष्य को पाप से मुक्त कर देना है ॥ ६४ ॥

देव्युवाच—

देवदेव महादेव परमेश तपोधन।
गायत्रीं परमाराध्यमशौचेन जपेद् यदि।
तदाऽशुचिर्द्विजश्रेष्ठः सहसा याति शूद्रताम् ॥ ६५ ॥

श्री पार्वती ने कहा—हे देवेदेव, परम आराध्य गायत्री का जप यदि अशौच अवस्था में करे तो वह ब्राह्मण एक दम शूद्र बन जाता है ॥ ६५ ॥

श्रीदेव उवाच—

अत्याज्या तान्त्रिकी सन्ध्या जनने मरणे तथा।
त्याज्या च वैदिकी सन्ध्या जनने मरणे सदा ॥ ६६ ॥

श्री महादेव जीने कहा—जननाशौच या मरणाशौच में वैदिकी सन्ध्या का परित्याग करे। परन्तु इस अवस्था में भी तान्त्रिकी सन्ध्या का कभी भी परित्याग न करे ॥ ६६ ॥

प्रशस्तं तान्त्रिकं स्नानं गायत्रीतन्त्रसम्मतम्।
तान्त्रिकाचमनं कृत्वा ततः सन्ध्या च तान्त्रिकी ॥ ६७ ॥

पहले गायत्रीसम्मत तान्त्रिक स्नान तथा तान्त्रिक आचमन करे, उसके बाद तान्त्रिकी सन्ध्या करे ॥ ६७ ॥

गायत्री तान्त्रिकीं जप्त्वा सूर्यायाऽर्घ्यञ्च तान्त्रिकम्।
प्रजपेद् वैदिकीं नित्यां गायत्रीं परमाक्षरीम् ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् तन्त्रोक्त गायत्री का जप कर तान्त्रिक विधान से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे। उसके अनन्तर वैदिकी गायत्री का जप करे ॥ ६८ ॥

पूजयेत् पार्थिवं लिङ्गं शिवं परमकारणम्।
शक्तिमन्त्रं जपेदिष्टं प्रशस्यं शक्तिपूजनम् ॥ ६९ ॥

उसके बाद परम कारणभूत शिव का पार्थिव लिङ्ग (मृत्तिका की मूर्त्ति) बनाकर पूजन करे। तदनन्तर शक्ति का जप करे, कारण कि शक्ति का पूजन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ॥ ६९ ॥

नाशौचं शक्तिमन्त्रेषु शिवमन्त्रे नगात्मके।
श्रीविष्णोस्तान्त्रिके मन्त्रे नाशौचं बाधते प्रिये ॥ ७० ॥

हे प्रिये, शक्ति, शिव एवं विष्णु के तान्त्रिक मन्त्रों में किसी भी प्रकार का अशौच बाधित नहीं होता है ॥ ७० ॥

इति ते कथितं भेदं गायत्रीतन्त्रसम्मतम्।
प्रशस्यं तान्त्रिकं कृत्यं वैदिकं वर्जयेत् कलौ ॥ ७१ ॥

इस प्रकार मैंने तुम्हें तन्त्रसम्मत गायत्री का रहस्य बताया है। अतः तान्त्रिक कृत्य ही प्रशस्त है और इस कलियुग में वैदिक कृत्यों का परित्याग करे ॥ ७१ ॥

तान्त्रिकी वैदिकी सन्ध्या अन्तःसन्ध्या त्रिधा मता।
अशौचं वैदिके शस्तं तान्त्रिके न कदाचन ॥ ७२ ॥

यह सन्ध्या तान्त्रिकी, वैदिकी और अन्तःसन्ध्या इस भेद से तीन प्रकार की है। अशौच में वैदिक सन्ध्या न करे एवं तान्त्रिक सन्ध्या कर सकता है ॥ ७२ ॥

शौचे वाऽपि अशौचे वा अन्तःसन्ध्या प्रतिष्ठिता।
तान्त्रिकी वैदिकी सन्ध्या अन्तःसन्ध्यां विना वृथा ॥ ७३ ॥

किन्तु अन्तःसन्ध्या तो अशौच या अशौच नहीं रहने पर भी कर सकते हैं। तथा अन्तःसन्ध्या के बिना वैदिकी एवं तान्त्रिकी सन्ध्या व्यर्थ है ॥ ७३ ॥

या नित्या ब्रह्मगायत्री सर्वदेवेषु सम्मता।
स्मृतिशास्त्रे संहितायां पुराणेषु प्रतिष्ठिता ॥ ७४ ॥

समस्त देवताओं के सम्मत ब्रह्मगायत्री ही सर्वपूजित है। तथा स्मृति-संहिता एवं पुराणों में इस ब्रह्मगायत्री का निरूपण भली भाँति किया गया है ॥ ७४ ॥

अतः सर्वं परित्यज्य जपेत् तन्त्रमतं कलौ।
तान्त्रिकी यदि गायत्री तत्राऽपि वैदिकी भवेत् ॥ ७५ ॥

इसीलिए तो सभी का परित्याग कर इस कलियुग में तन्त्रोक्त गायत्री का जप करना चाहिए। यदि तान्त्रिकी गायत्री वैदिकी हो तो ॥ ७५ ॥

आत्माभिलषितं पिण्डं चतुर्वर्गप्रदायकम्।
न कुर्याद् यदि देवेशि तत्फलं प्रवदामि ते ॥ ७६ ॥

उस जापक का शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ को देने वाला

होता है। यदि कोई इस गायत्री का जप नहीं करे तो हे देवि, उसका फल मैं तुम से कहता हूँ ॥ ७६ ॥

अपि दैवाद्धि चार्वङ्गि आत्महत्याशतोपमः।
परंब्रह्ममयी हत्या आत्महत्या वरानने ॥ ७७ ॥

दैवयोग से यदि उस गायत्री का जप नहीं कर सके तो हे प्रिये, सैकड़ों आत्महत्या का पाप लगता है। तथा परब्रह्म की हत्या का पाप लगता है ॥ ७७ ॥

अनेनैव विधानेन यज्ञसूत्रं द्विजातये।
यो ददाति नरो मर्त्यः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ७८ ॥

जो मनुष्य तान्त्रिक विधान से ब्राह्मण को यज्ञोपवीत प्रदान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ के फल का भागी होता है ॥ ७८ ॥

संस्थाप्य ताम्रपात्रेषु दिव्यवस्त्रसमन्वितम्।
हिरण्यं मुद्गतुल्यञ्च दक्षिणासहितञ्च तत् ॥ ७९ ॥
यो ददाति नरो भक्त्या विप्राय वेदपारगे।
भुक्त्वा स्वर्गं विप्रयोनौ जायते स नरः पुनः ॥ ८० ॥

जो मनुष्य ताँबे के पात्र में दिव्य वस्त्र तथा मूँग के बराबर सुवर्ण रखकर दक्षिणा सहित अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ वेदपाठी ब्राह्मण को देता है। वह स्वर्ग-सुख का उपभोग कर, दूसरे जन्म में ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण करता है ॥ ७९-८० ॥

द्विजत्वं प्राप्यसौ मर्त्यः परंब्रह्माधिगच्छति।
वामहस्तस्य मूलादि दक्षिणस्य करस्य च ॥ ८१ ॥
अङ्गुष्ठान्तं भवेत् सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणात्मकम्।
सप्रमाणं तदा सूत्रं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ ८२ ॥

और वह मनुष्य ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। बाँयें और दाहिने मूल से अँगूठे तक तिगुना सूत्र ले, वही सूत्र (यज्ञोपवीत) चारों वेदों में सम्मत है ॥ ८१-८२ ॥

स्वगोत्रप्रवरैर्युक्तं शाखापल्लवसंयुतम्।
नागपाशयुतं ग्रन्थिं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् ॥ ८३ ॥

अपने गोत्र, प्रवर तथा शाखा पल्लव से युक्त एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मक नागपाश से युक्त यज्ञोपवीत में तीन गाँठ लगावे ॥ ८३ ॥

द्व्यङ्गुलान्तरिते सूत्रे वामावर्तक्रमेण च।
तिष्ठन्ति सर्वतन्त्राणि रूपादीनि वरानने ॥ ८४ ॥

हे वरानने, दो अँगुलि के अन्तरित सूत्र में वामावर्त क्रम से तन्त्रविधान से रूप आदि रहते हैं ॥ ८४ ॥

परस्य ब्रह्मणो दण्डं यत् सूत्रं त्रिगुणात्मकम्।
यत्र श्रीकुण्डली शक्तिश्छत्रं दण्डश्च ब्रह्मणः ॥ ८५ ॥

यह त्रिगुणात्मक सूत्र ही परब्रह्म का दण्डरूप है। जहाँ श्रीकुण्डलीरूपा शक्ति ही उस परब्रह्म के दण्ड का छत्र रूप है ॥ ८५ ॥

अतस्त्रिदण्डी देवेशि कथ्यते तत्त्वदर्शिभिः।
गायत्रीं प्रथमे भद्रे गोत्रञ्च तदनन्तरम् ॥ ८६ ॥
गायत्रीं प्रपठित्वा वै ग्रन्थिं दद्याद् द्विजोत्तमः।
प्रतिपाके पठेद् विप्रा गायत्रीं ब्रह्मसम्मिताम् ॥ ८७ ॥
हस्ताकर्षणगात्रेण गायत्रीं प्रपठेद् द्विजः।
एतत्ते कथितं सर्वं यज्ञसूत्रस्य निर्णयम् ॥ ८८ ॥

इसी लिए तो ज्ञानी लोग उस यज्ञोपवीत को त्रिदण्डी कहते हैं। हे देवि, पहले गायत्री का उच्चारण कर बाद में गोत्र का उच्चारण करते हुए गायत्री पढ़कर ब्राह्मण को चाहिए कि वह उस यज्ञोपवीत में गाँठ लगावे। और उस यज्ञोपवीत को हाथ में घुमाते हुऐ गायत्री का पाठ करे। इस प्रकार मैंने यज्ञोपवीत का निर्णय कर तुम्हें बताया ॥ ८६-८८ ॥

ॐ अस्य यज्ञोपवीतस्य अधिष्ठातृदेवता ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईश्वरः सदाशिवाः, मम वामस्कन्धनिवासे विनियोगः।

उसके बाद हाथ में जल लेकर 'ॐ अस्य यज्ञोपवीतस्य–' से लेकर 'विनियोगः' तक पढ़ कर जल छोड़ दे।

गायत्रीं प्रपठित्वा व वामस्कन्धे निधापयेत्।
विशेषमत्र वक्ष्यामि रहस्यसहस्रसम्पुटम्।
अत्यन्तगोपनं भद्रे नाम्ना मृत्युञ्जयं शृणु ॥ ८९ ॥

गायत्री का पाठ कर यज्ञोपवीत को बायें कन्धे पर धारण करे। अब जो मैं गायत्री के विशेष रहस्य का निरूपण कर रहा हूँ उसे अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए और उस रहस्य का नाम मृत्युंजय है ॥ ८९ ॥

गायत्री प्रथमं भद्रे अमृतं सिद्धिदायकम्।
द्वितीयमजपा विद्या तृतीयममृतं स्मृतम् ॥ ९० ॥

हे भद्रे, गायत्री का प्रथम सिद्धिदायक अमृत, दूसरा अजपा तथा तृतीय अमृत नाम का है ॥ ९० ॥

अमृतत्रयसंयुक्तं यदा सिद्धिर्न जायते।
स कालः परमब्रह्म तत्र पूजां समाचरेत्।
रहस्यातिरहस्यञ्च सारमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥

इत्यागमसन्दर्भे देवदेवीसंवादे गायत्रीतन्त्रस्य चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

जिस समय अमृतरूपा गायत्री से सिद्धि प्राप्त नहीं हो तो, उस समय वह काल परब्रह्म का समझना चाहिए और उस समय पूजा करनी चाहिए। मैंने गुप्त से भी गुप्त इस रहस्य का उद्घाटन किया है ॥ ९१ ॥

इस प्रकार आगमसन्दर्भ नामक ग्रन्थ में पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'तत्त्वदीपिका' हिन्दी-टीका में महादेव-पार्वती के संवादान्तर्गत गायत्रीतन्त्र का चौथा पटल समाप्त ॥ ४ ॥

—:o:—

पञ्चमः पटलः

श्रीदेव उवाच—

सन्ध्यादौ स्मरणं कृत्वा पञ्चत्रिंशद् द्विजोत्तमान्।
दीपिनीं दशधा जप्त्वा दशधा प्रणवं जपेत् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी ने कहा कि सन्ध्या करने के पूर्व पैंतीस ब्राह्मणों का स्मरण कर दस बार दीपिनी एवं दस बार प्रणव का जप करे ॥ १ ॥

गायत्रीं दशधा जप्त्वा सन्ध्याध्यानं ततः परम्।
सन्ध्याध्यानं ततः कृत्वा ततः सन्ध्यामुपास्महे ॥ २ ॥

उसके बाद दस बार गायत्री का जप कर, सन्ध्या का ध्यान करे। तत्पश्चात् सन्ध्या करे ॥ २ ॥

गायत्रीं दशधा जप्त्वा पुनः सन्ध्यां समापयेत्।
रहस्यं सप्तसन्ध्याया ज्ञात्वा सन्ध्यां करोति यः ॥ ३ ॥
स सन्ध्याफलमाप्नोति अन्यथा शूद्रवत् प्रिये।

गायत्रीदीपिन्यां यां प्रथमां ब्राह्मणस्मरणं ब्रह्मदीपिनीम्। सप्रणव-गायत्रीं दशधा दशधा त्रिसन्ध्यञ्च सन्ध्याध्यानं कृत्वा सन्ध्यागायत्री-मुपास्महे।

गायत्रीं दशधा जप्त्वा पुनः सन्ध्यां समापयेत्।
चन्द्रसूर्योपरागे च शूद्रश्राद्धे पुरोहितः ॥ ४ ॥

उसके बाद दस बार गायत्री जप कर, पश्चात् सन्ध्या समाप्त करे। इस सप्त-सन्ध्या का रहस्य भली-भाँति जानकर जो सन्ध्या करता है। वही सन्ध्या करने का फल प्राप्त करता है। यदि इस प्रकार जो सन्ध्या नहीं करता, हे प्रिये, वह शूद्र के समान होता है। ('गायत्रीदीपिनी' ग्रन्थ में सन्ध्या करने के पूर्व ब्राह्मणों के स्मरण का निरूपण किया गया है। सन्ध्या करने के पूर्व प्रणवयुक्त गायत्री का दस बार जप कर बाद में सन्ध्या-वन्दन करे)। सूर्य-चन्द्र के ग्रहण होने पर जो सन्ध्या करता है तथा शूद्र के यहाँ श्राद्ध भोजन करता है ॥ ३-४ ॥

कृतचाण्डालवद्विप्रस्तत्क्षणाद् याति निश्चयम्।
हयदानं यथा दूष्यं शूद्रश्राद्धं तथैव च ॥ ५ ॥
न दूष्यं मन्त्रदानं स्यात् शूद्रेष्वपि कदाचन ॥ ६ ॥

वह उसी क्षण चाण्डाल बन जाता है। जिस प्रकार घोड़े का दान दूषित है उसी प्रकार शूद्र के यहाँ श्राद्ध भोजन भी निषिद्ध है। परन्तु गायत्रीतन्त्र का दान दूषित नहीं है, चाहे वह शूद्र को भी दिया जाय, उसमें किसी प्रकार का भी दोष नहीं है ॥ ५-६ ॥

यदन्नं ग्रहणे श्राद्धे दीयते शूद्रजातिभिः।
शूद्रान्नं तद्धि चार्वङ्गि कथ्यते तन्त्रकोविदैः ॥ ७ ॥

शूद्र जाति-द्वारा जो अन्न ग्रहण अथवा श्राद्ध में ब्राह्मण को प्रदान किया जाता है, तान्त्रिक लोग उसे ही शूद्रान्न कहते हैं ॥ ७ ॥

अन्यस्य दिवसस्यान्नं श्राद्धस्य वरवर्णिनि।
आमान्नं तच्च सर्वत्र शूद्रान्नं न च कुत्रचित् ॥ ८ ।

शूद्र से भिन्न लोग श्राद्ध में जो अन्न ब्राह्मणों को प्रदान करते हैं, उसे आमान्न कहते हैं, उसे शूद्रान्न नहीं कहते ॥ ८ ॥

शूद्रान्नपदमात्रेण सिद्धान्नं कथ्यते बुधैः।
आदाय शूद्रसिद्धान्नं यथा विप्रः पराभवम्।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथा पराभवं सदा ॥ ९ ॥

शूद्रान्न को ही सिद्धान्न कहते हैं। शूद्र सिद्धान्न को लेकर जिस प्रकार ब्राह्मण पराजित होता है। उसी प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण पराभव को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

आद्यन्ते यज्जपं भद्रे गायत्र्या दशधा दश।
आद्यन्ते दशधा यद् यद् सन्ध्याया अङ्गमेव तत् ॥ १० ॥

आदि अन्त में दस बार गायत्री का जप करे। आद्यन्त में दस बार गायत्री का जप करना सन्ध्या का अंग ही है ॥ १० ॥

न नित्यं तज्जपं भद्रे न च कार्य्यं कदाचन ॥ ११ ॥

जब सन्ध्या करे तभी जप करे उसे निन्तर नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥

कुशासने समासीनः प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः।
गायत्रीं प्रजपेद् धीमान् अष्टोत्तरशतं गृहे ॥ १२ ॥

अपने घर में कुश के आसन पर बैठकर, पूर्व या उत्तर की ओर मुखकर, १०८ बार गायत्री का जप करे ॥ १२ ॥

जले यदि जपेद् विद्यां न दोषस्तत्र जायते।
जलशायी यदा विष्णुः गायत्रीं प्रजपेज्जले।
दशधा एकधा वाऽपि गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः ॥ १३ ॥

अन्यथा विफला सन्ध्या सफला न कदाचन ॥ १४ ॥

यही जप यदि जल में खड़े होकर किया जाय तो भी कोई दोष नहीं है। कारण कि भगवान् विष्णु जल में ही शयन करते हैं। सन्ध्या करते समय दस बार या एक बार गायत्री का जप अवश्य करना चाहिए, नहीं तो वह सन्ध्या निष्फल हो जाती है। कभी सफल नहीं होती ॥ १३-१४ ॥

गायत्रीरहितो विप्रः स कथं ब्राह्मणो भवेत्।
ओं शन्नादियुक्तं वाक्यानि प्राणायामादिकानि च।
गायत्रीसर्गपर्य्यन्तं सन्ध्येति परिकीर्तिता ॥ १५ ॥

गायत्री मन्त्र से रहित वह ब्राह्मण किस प्रकार हो सकता है। ॐ शन्नादि युक्त वाक्य, प्राणायाम तथा गायत्री इसी का ही नाम सन्ध्या है ॥ १५ ॥

जीवव्यक्तिः स एवात्मा एक एव न चाऽन्यथा।
द्वितीयस्तत्र गायत्री जायते ब्राह्मणः स्वयम् ॥ १६ ॥
शरीरी तत्र जीवात्मा शरीरं तस्य ब्राह्मणः ॥ १७ ॥

जीव व्यक्तिरूप आत्मा एक ही है। गायत्री रूप ही स्वयं ब्राह्मण होता है। जीवात्मा उसका शरीरी है तथा उसका शरीर ही ब्राह्मण है ॥ १६-१७ ॥

सदा पवित्रं विप्रात्मा अतः पापैर्न लिप्यते।
रूपादितत्त्वमाधारमात्मा ह्याधेयमुच्यते ॥ १८ ॥

ब्राह्मण की आत्मा सर्वदा पवित्र है। इसी लिए वह किसी प्रकार भी पाप में लिप्त नहीं होता। उसका रूपादि तत्त्व आधार है तथा आत्मा आधेय है ॥ १८ ॥

गायत्रीस्मरणात् पापमत एव न विद्यते।
शरीरे परमेशानि पद्मपत्रे यथा पयः ॥ १९ ॥

इसी लिए तो गायत्री के स्मरण मात्र से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार कमल पर जल नहीं टिकता, उसी प्रकार गायत्री जप करने वाले के शरीर में किसी प्रकार का भी पाप नहीं होता है ॥ १९ ॥

गायत्रीनिर्मितो देहो यस्य जीवस्य पार्वति।
ब्राह्मणः कथ्यते तेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ २० ॥

हे पार्वति, जिस जीव का शरीर गायत्री से निर्मित हुआ है। उसे ही तत्त्वदर्शी मुनिगण ब्राह्मण कहते है ॥ २० ॥

जीवात्मा न च जप्तव्यो महाविद्या दशाक्षरी।
सहसा जायते जन्म रेतःशोणितसम्पुटे ॥ २१ ॥

जो जीवात्मा महाविद्या दशाक्षरी का जप नहीं करता वह रेत और शोणित के सम्पुट में पड़कर जन्म ग्रहण करता है अर्थात् वह कभी मुक्त नहीं होता ॥ २१ ॥

इति ते कथ्यते वेदे परंब्रह्ममये घटे।
कुलशास्त्रे ब्रह्मघटे गायत्रीकुण्डलीषु च ॥ २२ ॥

यह समस्त वृत्तान्त परब्रह्ममय घट, तथा वेद में कुल शास्त्र में एवं गायत्री कुण्डली में निरूपित है, जिसका वर्णन मैंने तुम से किया ॥ २२ ॥

गायत्रीसहितश्चात्मा एकता लयमाप्नुयात्।
अतोऽत्र कथ्यते वेदे कुलीनश्च द्विजः सदा ॥ २३ ॥

जो गायत्री-सहित आत्मा है वह ब्रह्म में एकता को प्राप्त कर लय होता है। इसी लिए वेद में उसे कुलीन द्विज कहा जाता है ॥ २३ ॥

शाठ्यादवज्ञया भद्रे न जपेत् तु द्विजो हि यः।
यवनस्य तु वीर्य्येण तस्य जन्म सुनिश्चयः ॥ २४ ॥

जो ब्राह्मण शठता एवं अवज्ञा के कारण गायत्री-जप नहीं करता, उस का जन्म यवन के वीर्य से हुआ है, ऐसा निश्चित ही जानना चाहिए ॥ २४ ॥

गायत्रीष्वप्यविश्वासो यस्य विप्रस्य जायते।
स एव यवनो देवि गायत्रीं स कथं जपेत् ॥ २५ ॥

जिस ब्राह्मण का गायत्री में विश्वास नहीं है, वही यवन है, कारण कि हे देवि, यवन होने से ही वह गायत्री का जप नहीं करता ॥ २५ ॥

स पापी यवनो देवि यद्देशे विद्यते सदा।
तद्देशं पतितं मन्ये राजा पातकसंयुतः ॥ २६ ॥

हे देवि, जिस देश में गायत्री जप नहीं करने वाला यवनस्वरूप पापी ब्राह्मण रहता है। वह देश राजा-सहित पातकी होता है अर्थात् उसके पाप का भोग उस देश के राजा एवं समस्त प्रजा को भोगना पड़ता है ॥ २६ ॥

तस्य संसर्गिणो विप्राः पतितास्ते च निन्दिताः।
गायत्रीरहितस्यान्नं यवनान्नाधमं स्मृतम् ॥ २७ ॥

उसी प्रकार गायत्री में अविश्वस्त ब्राह्मण के संसर्ग में रहने वाले शुद्ध ब्राह्मण भी पतित एवं निन्दित बन जाते हैं। ऐसे पातकी का अधम अन्न यवनान्न कहलाता है ॥ २७ ॥

यवनान्नं वरं भुङ्क्ते न जलं तस्य पार्वति।
यदि दैवाच्च गोहत्या जायते ब्राह्मणादिषु ॥ २८ ॥

पञ्चाहाभ्यन्तरे कुर्याद् यतिचान्द्रायणं कलौ।
तच्च पञ्चदिनादूर्ध्वं चान्द्रायणशतं चरेत् ॥ २९ ॥

हे पार्वती, यवन का अन्न ग्रहण करना तो कदाचित् श्रेष्ठ हो सकता है, परन्तु ऐसे पतित ब्राह्मण का जल ग्रहण करना अत्यन्त निषिद्ध है। यदि दैववशात् ब्राह्मण गोहत्या कर दे, तो उसे चाहिए कि वह पाँच दिन के अन्दर चान्द्रायण व्रत करे। और पाँच दिन के बाद यदि प्रायश्चित्त करना हो तो सौ चान्द्रायण व्रत करे ॥ २८-२९ ॥

कथोपकथनाच्चैव भोजनाद् भ्रमणाद् यथा।
अन्नसंख्यासमं पापं वाक्यमानेन गोवधम् ॥ ३० ॥

गायत्रीरहित पतित ब्राह्मण की वार्ता करने से एवं उसके साथ भ्रमण करने से तथा भोजन करने से जितना दाना अन्न का भक्षण किया जाता है, उनका ही पाप लगता है एवं ऐसे मनुष्य के साथ बातचीत करने से भी गोवध का पाप होता है ॥ ३० ॥

नित्यं प्रवर्द्धते तस्य कलिकाले विशेषतः।
आलोक्य तन्मुखं लोकस्तत्समः पातकी यथा ॥ ३१ ॥

इस कलियुग में तो ऐसे पातकी के मुख देखने वाले को भी उस पातकी के समान पाप लगता है ॥ ३१ ॥

यतिचान्द्रायणं कृत्वा तल्लोकः शुद्धतामियात्।
सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते स भवेद् ब्रह्मघातकः ॥ ३२ ॥

ऐसे पातकी के साथ रहने से होने वाला पाप चान्द्रायणव्रत करने से नष्ट होता है। यदि चान्द्रायणव्रत न करे तो सातवें दिन वह ब्रह्महत्या के पाप का दोषी होता है ॥ ३२ ॥

निष्कृतिर्नास्ति तत्रापि प्रायश्चित्तं न विद्यते।
नानापापयुतो भूत्वा व्याघ्रवद् वर्द्धते कलौ ॥ ३३ ॥

इसके सिवाय उस पाप का अन्य कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है। तथा ऐसा मनुष्य अत्यन्त पाप से युक्त होकर इस कलियुग में नरभक्षक व्याघ्र के समान विचरण करते हुए वृद्धिगत होता है ॥ ३३ ॥

कृत्वा च तस्य संसर्गं व्याघ्रवद् वर्द्धते सदा।
एकपादं द्विपादं वा त्रिपादं युगभेदतः ॥ ३४ ॥

ऐसे पापी मनुष्य का संसर्ग करने वाला भी व्याघ्र के समान हिंसक बन जाता है। युगभेद से उसे एक पाद (एक हिस्सा), द्विपाद (दो हिस्सा) तथा त्रिपाद (तीन हिस्सा) पाप का उपभोग करना पड़ता है ॥ ३४ ॥

सत्ये तथैकपादं स्यात् त्रेतायाञ्च द्विपादकम्।
द्वापरे च त्रिपादं स्यात् कलिकाले चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥

सत्ययुग में एक पाद, त्रेता में दो पाद, द्वापर में तीन पाद (हिंसा) तथा कलि में चौगुना पाप भोगना पड़ता है ॥ ३५ ॥

स्वहस्तेन कृता हत्या दैवाद् वा सर्वजातिषु।
यतिचान्द्रायणं शस्तं पादादीन् न कलेर्मतम्।
गायत्रीरहितस्यापि पापमेवं प्रवर्त्तते ॥ ३६ ॥

अपने हाथ से की हुई हत्या का फल सभी को नहीं भुगतना पड़ता। तथा इस कलि में केवल कर्ता को ही भुगतना पड़ता है और उस पाप का एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद दोष भी कोई नहीं लगता। इसी प्रकार गायत्रीरहित वाले को भी उसी प्रकार का पाप लगता है ॥ ३६ ॥

यस्य गेहेषु गोहत्या यवनेन कृता कलौ।
शतचान्द्रायणं कृत्वा गोस्वामी शुद्धतामियात् ॥ ३७ ॥

कलि में जिस के घर यवन गोहत्या कर दे, तो उस गौ के स्वामी को चाहिए कि वह उस हत्याजन्य पापशुद्धि के लिए सौ चान्द्रायण व्रत करे, इससे उसकी शुद्धि होती है ॥ ३७ ॥

इति ते कथितं दैवं परं देव कलेर्मतम्।
स्वहस्तमारणाच्चैव गोवधं दूषितं यथा।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव दूषितः सदा ॥ ३८ ॥

हे देवि, इस प्रकार मैंने तुम को कलियुग में पाप के नष्ट होने का उपाय बताया। अपने हाथ से गोहत्या करने से जो पाप लगता है वह पाप गायत्री से हीन ब्राह्मण को भी लगता है ॥ ३८ ॥

आलापाद् गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्।
ये लोकास्तस्य संसर्गे तेऽपि तद्दोषभागिनः ॥ ३९ ॥
यतिचान्द्रायणं कृत्वा ते लोकाः शुद्धतामियुः।
अन्यस्य यदि गोहत्या यवनेन कृता कलौ ॥ ४० ॥
अन्यवेश्मनि सा हत्या प्राप्नुयान्निश्चयं गृहौ।
अर्द्धं कृत्वा तु गोस्वामी गृहस्वामी तथैव च ॥ ४१ ॥

ऐसे पातकी के साथ बात करने, शरीर स्पर्श करने एवं श्वास लेने से तथा भोजन करने से उसे भी वही पाप भुगतना पड़ता है। ऐसे लोग चान्द्रायण व्रत कर शुद्ध हो सकते हैं। यदि दूसरे की गौ की हत्या यवन करे तो चाहे वह दूसरे के मकान में हो क्यों न की गयी हो आधा-आधा पाप गृहस्वामी तथा गोस्वामी दोनों को अवश्य ही लगता है ॥ ३९-४१ ॥

यतिचान्द्रायणं कृत्वा पूतो भवति तत्क्षणात्।
प्रसङ्गात् कथितं तुभ्यं दैवाद् गोवधनिर्णयम् ॥ ४२ ॥

उस समय गोस्वामी तथा गृहस्वामी दोनों को चाहिए कि वे चान्द्रायण व्रत करें। ऐसा करने से सद्यः वे शुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार प्रसंगवशात् मैंने तुम से गोवध के निर्णय का निरूपण किया ॥ ४२ ॥

गायत्र्याः कारणमात्मा आत्मनः कारणं स च।
उभयोः कारणं मन्त्रं यज्जप्तमात्मनानिशम् ॥ ४३ ॥

गायत्री का कारण आत्मा तथा आत्मा का कारण वह है, एवं उन दोनों का कारण आत्मा द्वारा निरन्तर जपा जाने वाला मन्त्र है ॥ ४३ ॥

अन्तरात्मसमं आत्मा गायत्री परमात्मना।
ज्ञानात्मसहितं मन्त्रं यज्जप्तमात्मनानिशम् ॥ ४४ ॥
एतत्ते कथितं सूक्ष्मं परमार्थनिरूपणम्।
प्रथमे दशधा जप्त्वा गायत्रीं ब्राह्मणं प्रिये ॥ ४५ ॥

जिस प्रकार अन्तरात्मा के समान आत्मा, परमात्मा के समान गायत्री है। उसी प्रकार आत्मा-द्वारा निरन्तर जपा जाने वाला मन्त्र ज्ञानात्म के सहित है। इसका परमार्थ निरूपण मैंने तुम से किया। पहले ब्राह्मण को चाहिए कि वह दस बार गायत्री का जप करे ॥ ४४-४५ ॥

जीवात्मना च जप्तव्यं दशधा प्रजपेत्ततः।
अधोऽहं तद् द्वयं जप्त्वा यस्य य इष्टदैवतः ॥ ४६ ॥

उस के बाद जीवात्मा-द्वारा दस बार जप करे। पुनः जिस का जो इष्ट देव हो उसका जीवात्मा तथा अन्तरात्मा से जप करे ॥ ४६ ॥

प्रथमाष्टाक्षरं सृष्टिं जप्त्वा इष्टं जपेत् सुधीः।
द्वितायाष्टाक्षरं जप्त्वा ततस्तु पूजयेन्मनुम् ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि वह पहले अष्टाक्षर सृष्टि का जप कर, अपने इष्ट का जप करे। तदनन्तर द्वितीय अष्टाक्षर जप कर मनु का पूजन करे ॥ ४७ ॥

तृतीयाष्टाक्षरं जप्त्वा इष्टमन्त्रं ततो जपेत्।
सृष्टि-स्थिति-लयं देवि जपनिर्णयलक्षणम् ॥ ४८ ॥

पुनः तृतीयाष्टाक्षर का जप कर अपने इष्ट का जप करे। हे देवि, इस प्रकार सृष्टि, स्थिति, लय यही जप-निर्णय का लक्षण है ॥ ४८ ॥

यथाशक्ति जपं कृत्वा पूर्ववत् पूजयेत्ततः।
शालग्रामशिलामग्रे कृत्वा दिव्यं करोति यः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार शालग्राम शिला के आगे यथाशक्ति जप कर, अपने इष्ट का पूजन करे ॥ ४९ ॥

शालग्रामशिलां सृष्ट्वा यदि दिव्यं करोति यः ।
कर्ता कारयिता भद्रे त्रिकोटिकुलसंयुतः ॥ ५० ॥
रौरवं नरकं याति नाऽन्यथा च कदाचन ।
तथा गङ्गोदकं ताम्रं गोमयं गोरजस्तथा ॥ ५१ ॥
सत्यं वाऽपि असत्यं वा स्पृष्ट्वा दिव्यं करोति यः ।
कर्ताऽथ रौरवं याति तथा कारयिता प्रिये ॥ ५२ ॥

यदि शालिग्राम शिला का परित्याग कर जो जप करता है, तो हे देवि, जप करने वाले तथा कराने वाले दोनों ही अपने तीन करोड़ बन्धु-बान्धव के साथ रौरव नरक का गामी होते हैं । गंगा जल, ताँबा, गोरज एवं गोबर इन सब का स्पर्श कर जो जप करता है या कराता है, वे दोनों ही रौरव नरक के भागी होते हैं ॥ ५०-५२ ॥

उभयोः पुनरावृत्तिर्नरयोनिषु नास्ति वै ।
तस्याऽस्ति पुनरावृत्तिर्व्याघ्रशूकरयोनिषु ॥ ५३ ॥

उन दोनों का पुनर्जन्म अयोनि में नहीं होता है, किन्तु व्याघ्र, शूकर योनि में होता है ॥ ५३ ॥

दिव्यकर्तुः कारयितुर्जपपूजा वृथा यथा ।
गायत्रीरहितस्यापि नरकं चोत्तरोत्तरम् ॥ ५४ ॥

जिस प्रकार दिव्य करने-कराने वाले की जप, पूजा जिस प्रकार व्यर्थ होती है, तथा वे उत्तरोत्तर समस्त नरक के भागी होते हैं, उसी प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण की भी वही दशा होती है ॥ ५४ ॥

पुराणं संहिताशास्त्रं शूद्रस्य निकटे यथा ।
पठित्वा शूद्रवद् विप्रो गायत्रीरहितस्तथा ॥ ५५ ॥

जिस प्रकार पुराण एवं संहिता का पाठ शूद्र के निकट पढ़ने से ब्राह्मण शूद्र के समान बन जाता है, उसी प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण भी हो जाता है ॥ ५५ ॥

पुराशब्दः प्राचीवाची णश्च गायत्रीवाचकः ।
पुरा प्राचीनवृत्तान्तं पापपुण्यसमन्वितम् ॥ ५६ ॥
प्राप्नोति श्रवणात् पुण्यं श्रवणात् पापनाशनम् ।
अतोऽत्र कथ्यते वेदे पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ ५७ ॥

पुरा माने पहला और ण का अर्थ है गायत्री अर्थात् पाप-पुण्य से युक्त प्राचीन वृत्तान्त, यह पुराण शब्द का अर्थ हुआ । जिसके श्रवण से पुण्य होता है एवं पाप का नाश होता है । इसी लिए वेद में इसे पुराण कहते हैं, जो कि ब्रह्मसम्मत है ॥ ५६-५७ ॥

पुराणं संहिताशास्त्रं स्मृतिशास्त्रं तथैव च ।
गायत्र्याः परमेशानि सदर्थं ब्रह्मसम्मितम् ॥ ५८ ॥

पुराण, संहिता शास्त्र एवं स्मृतिशास्त्र आदि गायत्री के ही अर्थ के प्रतिपादन करने वाले हैं तथा ब्रह्मसम्मत हैं ॥ ५८ ॥

श्रवणे नाधिकाऽस्ति शूद्राणां च कदाचन ।
एतत्ते कथितं देवि ब्रह्मतत्त्वस्वरूपिणम् ॥ ५९ ॥

हे देवि, उसे श्रवण करने का अधिकार शूद्र को कभी भी नहीं है । ये सभी ब्रह्मतत्त्व का निरूपण मैंने तुम से किया ॥५९ ॥

ब्राह्मणात् परतरं किञ्चिद् भूतले नास्ति पार्वति ।
शूद्रोऽपि अधिकारी स्याद् यज्ञसूत्रप्रदानतः ॥ ६० ॥

हे पार्वती, ब्राह्मण से बढ़कर इस पृथ्वी में और कोई भी पूज्य नहीं है । और यज्ञसूत्र के प्रदान से शूद्र भी अधिकारी बन जाता है ॥ ६० ॥

परीक्षा उपवीतस्य ब्राह्मणस्य कलौ यथा ।
ब्राह्मणस्य विवादेषु जातिध्वंसे सुरार्चिते ॥ ६१ ॥
अग्निं प्रज्वाल्य विधिवत् विधिं च पूजयेद् विधिम् ।
दत्त्वा पञ्चाहुतिं वह्नौ हुतयेत्तदनन्तरम् ॥ ६२ ॥

जिस प्रकार ब्राह्मण की परीक्षा होती है उसी प्रकार कलियुग में उपवीत की भी परीक्षा होती है । जातिध्वंसकारी तथा मद्यपी ब्राह्मण के विवाद में अग्नि प्रज्वलित कर विधि-विधान से विधि का पूजन करे । उसके बाद अग्नि में पाँच आहुति दे ॥ ६१-६२ ॥

प्राणादिपञ्चभूतानां होमं कुर्याद् विशालधीः ।
ततः स्कन्धात् समुत्तोल्य उभयोरुपवीतकम् ॥ ६३ ॥

प्राण, अपान आदि पंचभूतों का हवन करे । उसके बाद कन्धे से ऊपर उठाकर दोनों के यज्ञोपवीत का ॥६३॥

गायत्रीं प्रपठित्वा वै निःक्षिपेद् वह्निमण्डले ।
यस्य सूत्रं भवेद् भस्म निश्चयं पतितः स च ॥ ६४ ॥

गायत्री मन्त्र पढ़कर अग्नि में प्रक्षेप करे । उसमें जिसका सूत्र अग्नि में भस्म हो जाय वही निश्चय पतित है ॥ ६४ ॥

उभयोर्यदि भस्म स्यात् तदेव समता द्वयोः ।
विवादो ब्राह्मणस्त्रीषु जायते यदि सुन्दरि ॥ ६५ ॥
परीक्षैवं तदा भद्रे तत् पतेन्नाऽत्र संशयः ।
कलौ दुष्टं महेशानि ब्राह्मणे घृतकाञ्चनम् ॥ ६६ ॥

निस्तेजाः ब्राह्मणाः सर्वे कलिकाले विशेषतः ।
सतेजा उपवीतं च उपवीतं परीक्षयेत् ॥ ६७ ॥

यदि दोनों का यज्ञोपवीत भस्म हो जाय तो दोनों ही बराबर हो जाते हैं अर्थात् पतित बन जाति हैं । हे सुन्दरि, यदि ब्राह्मण की स्त्री में विवाद होता है, तो उनके पति के यज्ञोपवीत को अग्नि में डाल कर उसके जल जाने पर वह पतित है, ऐसा समझना चाहिए । इस कलिकाल में ब्राह्मण के लिए घृत एवं कांचन निषिद्ध है, उसे ग्रहण करने वाला ब्राह्मण निस्तेज होता है । अतः वह ब्राह्मण सतेज है या निस्तेज इस को यज्ञोपवीत से परीक्षा करे ॥ ६५-६७ ॥

एतत् तु ब्राह्मणं तन्त्रं यस्य वेश्मनि संस्थितम् ।
कैलाससदृशं भद्रे मन्दिरं तस्य नाऽन्यथा ॥ ६८ ॥
मन्दिरं परमेशानि एतत्तन्त्रविवर्जितम् ।
श्मशानं परमेशानि मन्दिरं तस्य नाऽन्यथा ॥ ६९ ॥

हे देवि, यह ब्राह्मणतन्त्र जिस के गृह में रहता है उस का गृह कैलाश के सदृश होता है । उसी प्रकार ब्राह्मण तन्त्र से रहित गृह श्मशान के समान होता है ॥ ६८-६९ ॥

ब्रह्मचर्येषु शूद्राणां नाधिकारः कदाचन ।
ब्रह्मचर्यं ब्राह्मणस्य कलौ नास्ति कदाचन ॥ ७० ॥

ब्रह्मचर्य में शूद्र का अधिकार नहीं है । इस कलियुग में ब्राह्मण के लिए भी ब्रह्मचर्य का अधिकार कभी नहीं है ॥ ७० ॥

शूद्रसेवा सदा यस्य विप्रस्य क्षत्रियस्य वा ।
द्वौ यथा नरकं यातः शूद्रेण सह रौरवम् ॥ ७१ ॥
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव नरकं व्रजेत् ।
एतत्तन्त्रमविज्ञाय अन्यशास्त्रं पठेत् तु यः ॥ ७२ ॥
स यथा शूद्रवद्विप्रो गायत्रीरहितस्तथा ।
ब्राह्मण-क्षत्र-वैश्यानां शूद्राणां च स्त्रियस्तथा ॥ ७३ ॥
सङ्गमाद् भूतयक्षस्य यक्षिणी भूतिनी यथा ।
तस्याः सङ्गममात्रेण भूतः स्यात् तत्पतिर्यथा ।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव याति शूद्रताम् ॥ ७४ ॥

जिस प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय शूद्र की सेवा करते हैं, तो वे दोनों ही रौरव नरक के भागी होते हैं । उसी प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण भी नरक का भागी होता है । इस तन्त्र को बिना जाने ही जो अन्य शास्त्रादि का अध्ययन करता है वह गायत्री से रहित ब्राह्मण के समान शूद्रवत् होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का

शूद्र स्त्रियों के साथ संग करने से भूत की स्त्री भूतिनी एवं यक्ष की स्त्री यक्षिणी के समान स्त्रियों के संगम मात्र से बन जाता है । जिस प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र बन जाता है उसी प्रकार शूद्र की स्त्री से संग करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्र बन जाते हैं ॥ ७१-७४ ॥

न चाऽत्र वर्णविश्लेषो न च वा पाददूषणम् ।
नाऽत्र सन्धिर्महेशानि न चाऽत्र श्लोकयोजना ॥ ७५ ॥

यहाँ वर्णविश्लेष, पाददूषण एवं सन्धि तथा श्लोक को योजना नहीं होती ॥ ७५ ॥

पुरातनी पूर्णविद्या परब्रह्मप्रकाशिनी ।
अनन्त-महिमायुक्ता-ऽनन्तव्याकरणैर्युता ॥ ७६ ॥

यह गायत्री देवतारूप सदासिद्धा तथा पुरातनी, पूर्णविद्या एवं परब्रह्म प्रकाशरूपा है । तथा अनन्त महिमा युक्त एवं अनन्त व्याकरण से युक्त है ॥ ७६ ॥

स्वभावतः सदा सिद्धा गायत्री परदेवता ।
यः स्वरः प्रथमे उक्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ ७७ ॥
तदाकारः स्वरः पञ्चदशकुमाररञ्जितः ।
वायुबीजसमाकारो विसर्गान्तः स्वरस्ततः ॥ ७८ ॥

जो प्रथम में ब्रह्म, विष्णु, शिवात्मक स्वर कहा है तदाकार स्वर पंचदश कुमार से रंजित है । उसके बाद वायुबीज के तुल्य विसर्गान्त स्वर है ॥ ७७-७८ ॥

गायत्र्यन्ते महेशानि द्वितीये सर्वभावना ।
सर्वमन्त्रेषु विद्यासु नास्ति वै पददूषणम् ॥ ७९ ॥

हे देवि, गायत्री के अन्त में, द्वितीय में सर्वभावना है । सभी मन्त्रों एवं विद्याओं में पददूषण नहीं है ॥ ७९ ॥

पदानां साधनं कृत्वा गायत्रीं प्रजपेद् यदि ।
ब्रह्मविद्या च गायत्री सहसा कृत्रिमा भवेत् ॥ ८० ॥

यदि पदों का साधन कर गायत्री का जप करे, तो ब्रह्मविद्या गायत्री एकाएकी कृत्रिम (बनावटी) बन जाती है ॥ ८० ॥

यथा शूद्रो हविष्याशी राममन्त्रं जपेत् सदा ।
स यथा रौरवं याति गायत्रीरहितस्तथा ॥ ८१ ॥

जिस प्रकार शूद्र हविष्य का उपभोग कर राममन्त्र जपे तो वह शूद्र, गायत्री से रहित ब्राह्मण के समान, रौरव नरक को जाता है ॥ ८१ ॥

ब्रह्मचर्येषु शूद्राणां नाऽधिकारः कदाचन ।
ब्रह्मचर्यं ब्राह्मणस्य कलौ नास्ति कदाचन ॥ ८२ ॥

शूद्रों का ब्रह्मचर्य में अधिकार नहीं है तथा कलियुग में ब्राह्मणों को भी अधिकार नहीं है ॥ ८२ ॥

पूर्वजन्मनि यः शत्रुः स शत्रुरिह जन्मनि ।
विधृत्य कपटी वेशमागतः शत्रुसन्निधिम् ॥ ८३ ॥

पूर्व जन्म में जो शत्रु रहता है वह इस जन्म में भी शत्रु रहता है। वह कपट वेश धारण कर शत्रु के सान्निध्य में आता है ॥ ८३ ॥

दूतकार इवारम्भं कृत्वा सदसि सविशेत् ।
उपविश्य सभामध्ये निन्दावादे प्रवर्त्तते ॥ ८४ ॥
अज्ञानादुभयोर्योगात् कर्मसूत्रस्य योजनम् ।
वृथा शिवो वृथा शक्तिः सूर्यो लम्बोदरो वृथा ॥ ८५ ॥
वृथा गङ्गा च गायत्री वृथा सन्ध्या वृथा बलिः ।
तथैव ब्राह्मणं यज्ञं सर्वं व्यर्थं कदर्थनम् ॥ ८६ ॥

जो दूत के समान आरम्भ कर, सभा में बैठकर निन्दावाद में प्रवृत्त होता है। वे अज्ञानवश कर्मसूत्र की योजना करते हैं। वे ही लोग सभा में बैठकर शिव, भक्ति, सूर्य, लम्बोदर (गणेशजी), गंगा, गायत्री, सन्ध्या तथा बलि, ब्राह्मण और यज्ञ सभी व्यर्थ हैं—ऐसा कहते हैं ॥ ८४-८६ ॥

सर्वं मिथ्यैवेह लोकः सत्यं कृष्णं भजाऽधुना ।
गीतालापमयं भावं श्लोकं भावय सत्तमे ॥ ८७ ॥

यह सूर्यादि सभी मिथ्या है केवल कृष्ण भजन ही सत्य है, अतः कृष्ण का भजन करो। इस प्रकार गीता के श्लोकों का उद्धरण दिया करते हैं ॥ ८७ ॥

श्रुत्वा शत्रोर्मुखाच्छत्रोर्मतिनाशः प्रजायते ।
सर्वं त्यक्त्वा शत्रुवाक्यात् कृष्णदेवं समर्चयेत् ॥ ८८ ॥

इस प्रकार शत्रु के मुख से सुनकर शत्रु के बुद्धि का नाश होता है। तथा शत्रु के कहने से सभी देवों के पूजन का परित्याग कर केवल कृष्ण का ही पूजन करे ॥ ८८ ॥

शत्रोर्वाक्यं ततः श्रुत्वा सर्वपूजां परित्यजेत् ।
तस्मै देवस्तथा रुष्टः कृष्णः कमललोचनः ॥ ८९ ॥

उस के बाद शत्रु के वाक्य का श्रवण कर, सभी देवों के पूजन का परित्याग करे। इस प्रकार कहने वाले मनुष्य पर कमल के समान नेत्र वाले भगवान् कृष्ण तथा शिव दोनों ही रुष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

शिवशक्तिमयं सर्वं ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ।
यः शिवः कृष्ण एवात्मा यः कृष्णः शिव एव सः ॥ ९० ॥

यह समस्त कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड शिव शक्ति जो शिव है वही कृष्ण है और जो कृष्ण है वही शिव है ॥ ९० ॥

शिवनिन्दां हरिः श्रुत्वा हृदि शल्यमिवार्पणम् ।
मतिनाशस्य यद्धर्मो महापातकसंयुतः ॥ ९१ ॥

वैष्णव यदि शिव की निन्दा सुने तो मानो हृदय में काँटे चुभने के समान अनुभव करे। महापातक से युक्त बुद्धि नाश का जो धर्म है वही उसे प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

व्यर्थं भवति तद्धर्मो गोहत्यासहितः सदा ।
ब्रह्महत्या च गोहत्या स्त्रीहत्या प्रतिवासरे ॥ ९२ ॥

और उसके द्वारा किये गये समस्त सुकृत व्यर्थ हो जाते हैं, तथा ऐसे शिव-द्रोही को गोहत्या का पाप लगता है, एवं ऐसे पुरुष को प्रतिदिन ब्रह्महत्या, गोहत्या तथा स्त्रीहत्या का पातक लगता है ॥ ९२ ॥

कृष्णहत्यामवाप्नोति बलिदानं विना प्रिये ।
बलिदानं महेशानि सर्वपूजासु शस्यते ॥ ९३ ॥

उसी प्रकार हे प्रिये, बलिदान के बिना कृष्णहत्या का पाप लगता है, कारण कि सभी पूजाओं में बलिदान होना बहुत जरूरी है ॥ ९३ ॥

अश्वमेधे राजसूये गोवधे क्षुद्रपूजने ।
पूजने सर्वदेवानां बलिदानं प्रशस्यते ॥ ९४ ॥

अश्वमेधयज्ञ, राजसूययज्ञ, गोमेध तथा क्षुद्रपूजन और समस्त देवताओं के पूजन में बलिदान का विधान है ॥ ९४ ॥

विना बलिप्रदानेन यदि शक्तिं प्रपूजयेत् ।
शक्तिहत्यामवाप्नोति ब्रह्महत्या पदे पदे ॥ ९५ ॥

यदि साधक बलिदान किये बिना शक्ति का पूजन करता है तो, हे भद्रे, उसे पद-पद में ब्रह्महत्या तथा शक्तिहत्या का पाप लगता है ॥ ९५ ॥

शक्तिपूजां बिना भद्रे यदि कृष्णं प्रपूजयेत् ।
सा पूजा काष्ठपूजावद् गोहत्या कृष्णपूजने ॥ ९६ ॥

यदि शक्तिपूजन के बिना जो कृष्ण का पूजन करता है, तो वह पूजा काष्ठ पूजन के समान व्यर्थ होता है तथा उसे गोहत्या का पाप लगता है ॥ ९६ ॥

शालग्रामशिलाद्यग्रे कृत्वा दिव्यं करोति यः ।
शालग्रामादिकं स्पृष्ट्वा यदि दिव्यं करोति च ॥ ९७ ॥

तथा गङ्गाजलादींश्च ताम्रं च गोमयं तथा।
तुलसीं च महादेवि सुवर्णं गोरजस्तथा ॥ ९८ ॥
वेदादीन्यपि पुण्यानि द्रव्याण्यन्यानि यान्यपि।
तीर्थपीठादिनामानि स्पृष्ट्वा दिव्यं करोत्यपि ॥ ९९ ॥
दिव्यकर्तुः कारयितुर्नरकान्न च निष्कृतिः।
पूर्वोक्तं यन्महेशानि तत्पापस्य विशुद्धये ॥ १०० ॥
यदि ब्रह्मवधः प्रोक्तः प्रायश्चित्तं चरिष्यति।
तस्मात् पापात् तदा शुद्धो नाऽन्यथा कल्पकोटिभिः ॥ १०१॥

शालिग्राम शिला के आगे अथवा शालिग्राम का स्पर्श करके जो दिव्य करता है, उसी प्रकार गंगाजल, ताँबा, गोमय, तुलसी, सुवर्ण, गोरज, वेद तथा अन्य पुण्य द्रव्य एवं तीर्थ पीठ आदि का स्पर्श कर जो दिव्य करता है ऐसे दिव्य करने तथा कराने वाले दोनों का ही नरक से छुटकारा नहीं होता। इस प्रकार के पाप की शुद्धि के लिए ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। तभी वह पाप से मुक्त हो सकता है, नहीं तो कोटि कल्प तक उसका उद्धार नहीं हो सकता ॥ ९७-१०१ ॥

अपरं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
गङ्गास्नानं हि नन्दादौ सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १०२ ॥

हे महादेवी, समस्त पाप के नष्ट करने का और भी कारण बताते हैं उसे ध्यान से श्रवण करो। पुनीत नदी तथा गंगा में स्नान करने से भी समस्त पाप नष्ट होते हैं। १०२ ॥

गङ्गातोये कृतं दिव्यं तत् पापं नगनन्दिनि।
महापातकोपपापं गङ्गास्नानाद् विनश्यति ॥ १०३ ॥

दिव्य पाप तथा महापातक एवं उपपातक समस्त पाप गंगास्नान से नष्ट होते हैं ॥ १०३ ॥

गङ्गायां मौषलं स्नानं महापातकनाशनम्।
सर्वतत्त्वमयी गङ्गा परमात्मस्वरूपिणी ॥ १०४ ॥
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयी ध्रुवा।
स्नानमात्रेण गङ्गायां पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ १०५ ॥

गंगा में प्रातःकाल का स्नान महापातक को भी नष्ट करने वाला होता है, कारण कि यह गंगा परमात्मस्वरूपिणी सर्वतत्त्वमयी, सर्वतीर्थमयी, तथा समस्त देवमयी है। इसी लिए तो इसमें केवल स्नान मात्र से ही ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट होते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

दुराधर्षं कथं याति चिन्तयेद् यो वदेदिति।
तस्याऽहं प्रददे घोरं कोटि-ब्रह्मवधोद्भवम् ॥ १०६ ॥

इस विषय में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं करना चाहिए। सन्देह करने वाले करोड़ों ब्रह्महत्या के पाप के भागी होते हैं ॥ १०६ ॥

स्तुतिवादमिमं मत्वा कुम्भीपाके महीयते।
आकल्पं नरकं भुक्त्वा ततो जायेत गर्दभः ॥ १०७ ॥

इस पर विश्वास नहीं रखने वाले तथा स्तुतिवाद करने वाले मनुष्य कुम्भीपाक नरक के भागी होते हैं और कल्पपर्यन्त नरक भोग कर गर्दभ योनि में जन्म लेते हैं ॥ १०७ ॥

गङ्गासमं त्रिभुवने नास्ति निस्तारकारणम्।
नानारत्नमयं दिव्यं मन्दिरं यानमेव च ॥ १०८ ॥
तथा विलक्षणां शय्यां रत्नसिंहासनं तथा।
छत्रं रत्नमयं दिव्यं तथैव रत्नपादुकाम्। १०९ ॥
सरोवरं तथा दिव्यं अन्नमेरुं तथैव च।
गुरुं विलङ्घ्य यो मूढो विष्णवे विनिवेदयेत् ॥ ११० ॥
पुरीषं च तथा मूत्रं जलमग्नं भवेद् ध्रुवम्।
गृहं यानं तथा शय्या पादुका छत्रमुत्तमम् ॥ १११ ॥
विष्ठापुञ्जं भवेत् सर्वं शिष्यस्तत्र कृमिर्यथा।
भविष्यति न सन्देहः कलिकाले च नाऽन्यथा ॥ ११२ ॥

इस जगत् में पाप को नष्ट करने में गंगा के समान और कोई भी नहीं है। नानारत्नमय दिव्य मन्दिर, यान तथा अपूर्वशय्या, रत्नजटित सिंहासन, रत्नमय दिव्य छत्र, रत्नजटित पादुका, सरोवर एवं अन्न का मेरु पर्वत ये सभी यदि गुरु का अपमान कर विष्णु को समर्पित किया जाये तो निश्चितरूप से वह जल में पुरीष, मूत्र, यान, शय्या, पादुका एवं उत्तमछत्र ये सभी विष्ठापुंज के समान होते हैं। उसी प्रकार शिष्य भी उस विष्ठा में कृमि के समान होता है। इस कलिकाल में इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए ॥ १०८-११२ ॥

कोटिवंशान् समादाय विष्ठायां जायते कृमिः।
एवं हि शारदीं पूजां यदि नो कुरुते नरः ॥ ११३ ॥
स चैवं फलमाप्नोति नाऽन्यथा च कदाचन ॥ ११४ ॥

इतना ही नहीं, वह कोटि कुल तक विष्ठा में कृमि (कीड़ा) होता है। इस प्रकार जो पुरुष शारदी पूजा नहीं करता, वह भी इसी फल का भागी होता है, इस में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं करना चाहिए ॥ ११३-११४ ॥

गुरोराज्ञां विना यश्च कन्यादानं करोति च।
मेषी भवति सा कन्या दाता मेषो भवेद् ध्रुवम्॥ ११५॥

जो मनुष्य गुरु की आज्ञा बिना कन्यादान करता है तो कन्या मेषी (भेंड़ी) तथा दाता मेष (भेंड़) होता है, यह निश्चित है॥ ११५॥

मषोमेषेण श्रृङ्गारी जायते परजन्मनि।
वरं कन्याविक्रये च पापमेवं न जायते॥ ११६॥

वह मनुष्य दूसरे जन्म में मेषी और मेष होता है और कन्या-विक्रय में किसी प्रकार का भी पाप नहीं होता॥ ११६॥

अनन्तसिद्धिदा चाज्ञा गुरुदेवस्य सुन्दरी।
गुरोरभावे चार्वङ्गि तथाभावे कुलस्य च॥ ११७॥
न दोषो जायते भद्रे मम वाक्ये च सुन्दरि।
एतत् सर्वं वरारोहे प्रतिमन्वन्तरे कलौ॥ ११८॥
भविष्यति न सन्देहो मम वाक्यं सुनिश्चयम्।
बलिदानं विना हत्या हत्या सर्वत्र गर्हिता॥ ११९॥

हे सुन्दरी, इस प्रकार गुरु की आज्ञा अनन्त सिद्धि को प्रदान करने वाली है। जहाँ गुरु अथवा कुल का कोई भी मनुष्य हो वहाँ मेरे वाक्य से ही कार्य करना चाहिए इसमें किसी प्रकार का भी दोष नहीं है। इस युग में प्रतिमन्वन्तर में मेरे कहे अनुसार ही कार्य करना चाहिए, इसमें किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं है। इसी प्रकार सभी हत्याएँ निन्दित हैं किन्तु बलिदान करने में जो हत्या होती है वह हत्या नहीं समझी जाती॥ ११७-११९॥

एवं निन्दापरो भूत्वा त्रिकोटिकुलसंयुतः।
सर्वधर्मं परित्यज्य स यथा रौरवं व्रजेत्॥ १२०॥

इसी प्रकार यदि मेरी बात पर जो विश्वास नहीं करता वह सभी धर्मों का परित्याग कर त्रिकोटिकुल सहित रौरव नरक का भागी होता है॥ १२०॥

गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव नरकं व्रजेत्।
यथा वक्ता तथा श्रोता प्रतिपालयिता तथा।
गायत्रीरहितो विप्रस्तथैव नरकं व्रजेत्॥ १२१॥

जिस प्रकार गायत्री से रहित ब्राह्मण चाहे वह वक्ता हो या श्रोता या प्रतिपालयिता नरक का गामी होता है, उसी प्रकार मेरी बात का विश्वास नहीं करने वाला नरक का गामी होता है॥ १२१॥

प्रथमाष्टाक्षरं भद्रे ऋग्वेद इति कथ्यते।
द्वितीयाष्टाक्षरं भद्रे सामवेदोऽभिधीयते॥ १२२॥

तृतीयाष्टाक्षरं भद्रे यजुर्वेदश्च कथ्यते।
चतुर्थाष्टाक्षरं भद्रे अथर्ववेद उच्यते॥ १२३॥

गायत्री के पहले के आठ अक्षर ऋग्वेद तथा द्वितीय पाद के आठ अक्षर सामवेद तथा तृतीय पाद के आठ अक्षर यजुर्वेद, उसी प्रकार चतुर्थ पाद के आठ अक्षर अथर्व वेद कहा गया है॥ १२२-१२३॥

वेदमाता च गायत्री अत एव प्रगीयते।
उपहारः पशोर्मांसं सतत्त्वं शोणितं बलिम्॥ १२४॥

इसीलिए गायत्री वेद की माता कही जाती है। पशु का मांस उपहार तथा उस के रक्त को बलि कहते हैं॥ १२४॥

पञ्चभूताक्षरमयं जीवात्मसहितं बलिम्।
ज्योत्स्नाशक्तिसमायोगादुपहारमुपस्थितम्।
अत एव हि सर्वत्र बलिरित्यभिधीयते॥ १२५॥

पंचभूताक्षर मय जीवात्मा सहित को ही बलि कहते हैं। उसमें ज्योत्स्ना शक्ति के रहने से ही उसे उपहार कहते हैं। इसीलिए तो उसे बलि कहा जाता है॥ १२५॥

यथा पूज्यस्तथा पूजा पूजकश्च तथैव च।
दत्त्वा पूजां देवतायै पूजकः स्वर्गमश्नुते॥ १२६॥

जिस प्रकार पूज्य उसी प्रकार पूजा तथा पूजक होना चाहिए। देवता की पूजा कर पूजक स्वर्ग में जाता है॥ १२६॥

बलिवाचकपूजा स्यात् पूजकः सेवकः स्मृतः।
यस्योद्देशं सा पूजा स्यात् निष्कामो मोक्षमाप्नुयात्॥ १२७॥

पूजा का ही अर्थ बलि है और पूजक ही सेवक है। जिसको उद्देश्य करके दिया जाये वही पूजा है तथा निष्काम पूजा से मोक्ष प्राप्त होता है॥ १२७॥

यदि न दीयते पूजा देवतायै नराधमैः।
दुर्बलः कुक्कुरो भूत्वा परजन्मनि जायते॥ १२८॥

यदि जो नराधम देवता की पूजा या बलि नहीं देता वह दूसरे जन्म में दुर्बल कुक्कुर होता है॥ १२८॥

सर्वेषां मृतजन्तूनां पूतिमांसं समश्नुते।
यो मूढः कृतचाण्डालो बलिदानं निषिध्यति॥ १२९॥
तस्य जिह्वा छुरिकया कर्तनं पापमोचनम्।
तदा सद्गतिमाप्नोति अन्यथा शूकरो भवेत्॥ १३०॥

तथा वह मृतक प्राणी का दुर्गन्ध युक्त मांस भक्षण करता है। जो मूर्ख बलिदान का निषेध करता है उस की जीभ यदि छुरी से काट ली जाय तो उसमें किसी प्रकार का भी पाप नहीं होता। तभी वह सद्गति को प्राप्त होता है, नहीं तो अन्य जन्म में शूकर योनि को प्राप्त होता है ॥ १२९-१३० ॥

नररूपबलिर्भूत्वा परजन्मनि जायते।
बलिदानं महेशानि स्वर्गसोपाननिर्णयम् ॥ १३१ ॥
निष्कामनात्तदा भद्रे मोक्षसोपाननिर्णयम्।
स्वर्गभोगं विना भद्रे न हि मुक्तिः प्रजायते ॥ १३२ ॥
आरुह्य बलिसोपानं परंब्रह्माधिगच्छति।
कुतो हत्या च पूजायां कस्य हत्या वरानने ॥ १३३ ॥

वही अन्य जन्म में नररूप से बलि बनता है। हे महेश्वरी, बलिदान ही स्वर्ग की सीढ़ी है। अर्थात् बलि प्रदान करने से ही स्वर्ग प्राप्त होता है। स्वर्ग के उपभोग बिना मुक्ति नहीं होती, अतः उस बलिरूपी सीढ़ी से चढ़कर परब्रह्म पद को प्राप्त होता है। हे भद्रे निष्काम बलि ही मोक्ष की सीढ़ी है। उस बलिदान से हत्या का पाप नहीं लगता ॥ १३१-१३३ ॥

सर्वं ब्रह्ममयं ह्येतत् पूजाकाले विशेषतः।
इति यो वेत्ति स ज्ञानी स एव वैष्णवोत्तमः ॥ १३४ ॥

कारण कि यह सभी ब्रह्ममय है और पूजाकाल में तो विशेष रूप से ब्रह्ममय है। इस प्रकार जो समझता है वही ज्ञानी है तथा वही श्रेष्ठ वैष्णव है ॥ १३४ ॥

स शाक्तः शिवभक्तश्च परंब्रह्माधिगच्छति।
मासि मासि प्रदातव्यं बलिदानं द्विजातिभिः ॥ १३५ ॥

वही शाक्त, वही शिवभक्त एवं ऐसे ही लोग परब्रह्म पद को प्राप्त होते हैं। अतः ब्राह्मणों को तो प्रत्येक महीने में बलिदान करना चाहिए ॥ १३५ ॥

शुक्लाष्टम्यां विशेषेण पूजयेत् परमेश्वरीम्।
उपोष्य विधिवत् पूज्या गन्ध-पुष्पादिभिः सुधीः। १३६ ॥
एकादशीकोटिफलं शुक्लाष्टम्यामुपोषणे।
शुक्लाष्टम्यां बलिं दत्त्वा अश्वमेधफलं लभेत् ॥ १३७ ॥

शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन परमेश्वरी का पूजन विशेष रूप से करना चाहिए। अतः साधक को चाहिए कि वह विधि-विधान से गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य आदि षोडशोपचार से, उपवास कर, पूजन करे। इस प्रकार करने से उसे करोड़ों एकादशी व्रत करने का फल प्राप्त होता है। तथा शुक्ल अष्टमी के दिन

बलिदान करने से तो वह अश्वमेध यज्ञ के फल का भागी होता है ॥ १३६-१३७ ॥

शरत्काले महाष्टम्यां न च दद्यान्महाबलिम्।
प्रत्यहं यस्तु पूतात्मा ददाति बलिमुत्तमम् ॥ १३८ ॥
शारदायै बलिं दद्यात् न हत्या न च दूषणम्।
कृष्णच्छागद्वयं भद्रे महिषद्वयमेव च।
महाबलिरिति प्रोक्तो महाष्टम्यां परित्यजेत् ॥ १३९ ।

शरद् ऋतु की महा अष्टमी के दिन देवी को बलि प्रदान नहीं करना चाहिए। जो भक्त प्रतिदिन पवित्र होकर शारदा को उत्तम बलिदान करता है, उसमें बलिदान करने वाले जीव की हत्या का दोष नहीं लगता। दो काले बकरे एवं दो महिष की बलि को महाबलि कहते हैं, परन्तु वह महाबलि महाष्टमी के दिन नहीं करनी चाहिए ॥ १३८-१३९ ॥

शुद्धसत्त्वात्मकः शुद्धः सत्त्वनिर्मितविग्रहः।
न मर्त्यः परमेशानि बलिदानं परित्यजेत् ॥ १४० ॥

हे देवि, जो मनुष्य शुद्ध सत्त्वात्मक है, शुद्ध है तथा सात्त्विक शरीर वाला है, उसे चाहिए कि वह बलिदान का परित्याग न करे ॥ १४० ॥

तत्राह परमेशानि शुद्धसत्त्वात्मकं शृणु।
निद्रया रहितो यस्तु क्षुत्तृष्णारहितस्तथा ॥ १४१ ॥
ज्ञानशक्तिमयो नित्यः परमानन्दविग्रहः।
शुद्धसत्त्वात्मकस्तेन कथ्यते तन्त्रकोविदैः ॥ १४२ ॥

हे देवि, जो निद्रा से रहित है तथा क्षुतृष्णा जिसमें व्याप्त नहीं है, ज्ञानशक्तिमय है एवं परमानन्दरूप है ऐसे ही लोगों को शुद्ध सत्त्वात्मक कहते हैं ॥ १४१-१४२ ॥

इच्छाशक्तिरजोरूपा सा च सृष्टिस्वरूपिणी।
कथ्यते रजोगुणस्तेन मुनिभिस्तन्त्रदर्शिभिः ॥ १४३ ॥

इच्छाशक्ति ही रजोरूपा है और वही सृष्टिस्वरूपिणी है, अतएव मुनि लोग उसे रजोगुण कहते हैं ॥ १४३ ॥

वैष्णवी ज्ञानशक्तिर्या सर्वभूते दयामयी।
अतः सत्त्वगुणः ख्यातः कथ्यते तन्त्रकोविदैः ॥ १४४ ॥

समस्त प्राणिमात्र में दयामयी वैष्णवी जो ज्ञानशक्ति है उसे ही तन्त्रज्ञ लोग सत्त्वगुण कहते हैं ॥ १४४ ॥

अनेककोटिब्रह्माण्डं रजः सत्त्वात्मकं मतम्।
कृते बलिप्रदाने च चण्डिकायै प्रसन्नधीः ॥ १४५ ॥

रजस्तमात्मकं देहं त्यक्त्वा सत्त्वात्मको भवेत्।
शुद्धसत्त्वात्मको भूत्वा महाभोगमवाप्नुयात् ॥ १४६ ॥

अनेक कोटि ब्रह्माण्ड रजः तथा सत्त्वात्मक है। जो लोग चण्डिका को प्रसन्न करने के लिए बलिप्रदान करते हैं वे रजस्तमात्मक शरीर का परित्याग कर सत्त्वात्मक हो जाते हैं। और शुद्ध सत्त्वात्मक होकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १४५-१४६ ॥

विना बलिप्रदानेन कुतः सत्त्वात्मको भवेत्।
बलिभिः साध्यते मुक्तिर्बलिभिः साध्यते दिवम् ॥ १४७ ॥
बलिभिः साध्यते धर्मो ह्यर्थश्च बलिभिर्भवेत्।
सगुणो यो नरो राजा बलिं दद्याद्दशाब्दतः ॥ १४८ ॥

बिना बलिदान के मनुष्य सत्त्वात्मक किस प्रकार हो सकता है? बलिदान से ही मुक्ति, स्वर्ग, धर्म, अर्थ प्राप्त होता है। जो मनुष्य तथा राजा दश वर्ष तक बलि प्रदान करता है वह उपर्युक्त धर्मादि को प्राप्त करता है ॥१४७-१४८॥

बलिदानं विना मांसं यो भुङ्क्तेऽज्ञानमोहितः।
ग्रासे ग्रासे मलं भुङ्क्ते शूकरस्य च नाऽन्यथा ॥ १४९ ॥

अज्ञान से युक्त जो मनुष्य विना बलिदान किये मांस खाता है। वह प्रत्येक ग्रास में शूकर का मल खाता है ॥ १४९ ॥

बलिदानं विना हत्यां यः करोति नराधमः।
अधमः कथ्यते येन महाबौद्धश्च कथ्यते ॥ १५० ॥

जो बलिदान नहीं करते हुए केवल पशु की हत्या करता है, उसे अधम तथा महाबौद्ध कहते हैं ॥ १५० ॥

यस्य यः कुरुते हत्यां स तस्य परजन्मनि।
कुरुते नाऽत्र सन्देहः सत्यं सत्यं न चाऽन्यथा ॥ १५१ ॥

बलिदान के बिना जो मनुष्य जिस पशु की हत्या करता है, तो दूसरे जन्म में वही पशु निस्सन्देह उस मनुष्य की हत्या करता है ॥ १५१ ॥

राजा श्रीसुरथो नाम्ना पुराऽऽसीन्मांसलोलुपः।
भुङ्क्ते ह्यज्ञानतो मांसं हत्वा च विविधान् पशून् ॥ १५२ ॥

पूर्व समय में एक सुरथ नाम का राजा था, वह अत्यन्त मांसलोलुप था। उसने अज्ञानवश अनेक पशुओं को मार कर मांस का भक्षण किया था ॥१५२॥

स राजा तेन पापेन पीडितः शत्रुभिः सदा।
शत्रुणा पीडितो भूत्वा प्रययौ मेधसालयम् ॥ १५३ ॥
प्रणम्य मेधसं राजा वृत्तान्तं विनिवेदयेत्।
किं करोमि क्व गच्छामि अब्रवीत् स पुनः पुनः ॥ १५४ ॥

स मुनिस्तद्वचः श्रुत्वा आश्वास्य सुरथं नृपम् ॥ १५५ ।

वही राजा सुरथ उसी पाप से सदा अपने शत्रुओं से पीड़ित रहता था। इसी से मेधस के आश्रम में गया। एवं मेधस को प्रणाम कर अपने दुःख का वृत्तान्त सुनाने लगा—'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?' इस प्रकार बार-बार कहने लगा। इस तरह सुरथ के वाक्य को सुन कर मेधस मुनि उनसे इस प्रकार बोले ॥ १५३-१५५ ॥

मेधस उवाच—

का चिन्ता राजशार्दूल जपस्वैकं महामनुम्।
पञ्चाक्षरीं तस्य कर्णे कथयामास मेधसः ॥ १५६ ॥

मेधस मुनि ने कहा—हे सुरथ, अब चिन्ता करना व्यर्थ है, तुम तो अब महामनु का जप करो। इस प्रकार मेधस ने सुरथ के कान में पंचाक्षरी मन्त्र का उपदेश किया ॥ १५६ ॥

ते पापाः काकरूपाश्च निर्ययुः कर्णगह्वरात्।
तान् दृष्ट्वा सुरथो राजा उवाच मेधसं मुनिम्।
किमेतद् ब्राह्मणश्रेष्ठ यदि जानासि मे वद ॥ १५७ ॥

उसी समय उस सुरथ के कान से वे समस्त पाप कौए का रूप धारण कर निकलने लगे। उनको देख कर सुरथ महामुनि मेधस से कहने लगा—'यह सब क्या है, अर्थात् मेरे कान से कौए क्यों निकल रहे हैं?' ॥ १५७ ॥

मेधस उवाच—

बलिदानं विना हत्या या कृता मांसलालसात्।
ते पापाः काकरूपेण निर्ययुस्तव विग्रहात् ॥ १५८ ॥

मेधस ने कहा कि—हे सुरथ, केवल मांस-लोलुपता के ही कारण आपने पशुओं को मारा परन्तु बलिदान नहीं किया। वे ही पापरूप कौए आपके शरीर से निकले ॥ १५८ ॥

पञ्चाक्षरबलाद्राजन् ते पापा निश्चयं ययुः।
पशुहत्याप्रमाणेन दिवसे दिवसे नृप ॥ १५९ ॥

परन्तु उस पंचाक्षर के उपदेश से वे समस्त पाप, जो कि पशुहत्या से उत्पन्न हुए थे, नष्ट हो गये ॥ १५९ ॥

निजगात्रस्य रुधिरं दत्त्वा पापं प्रमोचय।
अधुना भज राजेन्द्र! भवानीं भवमोचनीम् ॥ १६० ॥
भवानीं त्रिदशाराध्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स राजा पूजने मनः ॥ १६१ ॥

ददौ परमयत्नेन त्रिभिर्वर्षेण सिद्धताम् ।
सम्प्राप्य राज्यं सुरथो बलिदानप्रभावतः ॥ १६२ ॥

अतः तुम अपने शरीर से रक्त निकाल कर श्री पापमोचिनी भवानी का पूजन करो। जिस भवानी का पूजन देवतागण करते हैं, तथा वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रदान करने वाली हैं। इस प्रकार श्रवण कर राजा सुरथ ने भवानी के पूजन में अपना मन लगाया। राजा सुरथ ने तीन वर्ष तक अम्बिका का पूजन किया तथा उस बलिदान के प्रभाव से अपने नष्ट राज्य को पुनः प्राप्त किया ॥ १६०–१६२ ॥

बलिदानस्य माहात्म्यं न हि वक्तुं क्षमो मम ।
दिवसे दिवसे राजा बलिं दत्त्वा सहस्रशः ॥ १६३ ॥
बुभुजे पृथिवीपालो मेदिनीं सागरावधिम् ।
लक्षवर्षप्रमाणेन मेदिनीं बुभुजे नृपः ॥ १६४ ॥
न शर्म लेभे राजा च मनसा चिन्तितः सदा ।
प्रत्यहं बलिदानेन न जाने किं भविष्यति ॥ १६५ ॥
एतस्मिन् समये आयान्नारदो नृपमन्दिरम् ।
पूजयामास सुरथः सस्त्रीको नारदं मुनिम् ॥ १६६ ॥

इस बलिदान के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है ? इस प्रकार प्रतिदिन राजा सुरथ अपने शरीर, रक्त, मांस की बलि देने लगा, जिसके कारण उसने समुद्रपर्यन्त एकच्छत्र (चक्रवर्त्ती) राज्य किया। परन्तु उसने सुख प्राप्त नहीं किया, अपितु सर्वदा चिन्तित रहता था। इतने में उस राजमहल में नारदजी पधारे, तत्पश्चात् उसने अपनी स्त्री के सहित नारदजी का पूजन किया ॥ १६३-१६६ ॥

सुरथ उवाच—

त्वं हि विप्र द्विजश्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
विशेषं ब्राह्मणश्रेष्ठ वेदार्थं कथय प्रभो ॥ १६७ ॥

सुरथ ने कहा कि आप तो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं और समस्त शास्त्रों में पारंगत हैं, अतएव हे नारद जी, आप वेद के अर्थ का निरूपण करने की कृपा करें ॥ १६७ ॥

श्रीनारद उवाच—

विशेषं शृणु राजेन्द्र वेदध्यानं सनातनम् ।
वेदमन्त्रं महाराज परब्रह्ममयं सदा ॥ १६८ ॥

श्री नारदजी ने कहा—हे राजेन्द्र सुरथ, वेद का ध्यान जो कि सनातन एवं ब्रह्ममय है, उसे ध्यानपूर्वक आप सुनो ॥ १६८ ॥

चतुर्भुजां चतुर्वक्त्रां शुद्धस्फटिकसन्निभाम् ।
शुक्लपद्मसमासीनां पद्मगन्धमयीं सदा ॥ १६९ ॥
वराऽभयधरां नित्यां वीणापुस्तकधारिणीम् ।
भ्रमद्-भ्रमर-नीलाभ-नयनत्रय-राजिताम् ॥ १७० ॥
सिन्दूरतिलकोद्दीप्रामञ्जनाञ्चितलोचनाम् ।
कृष्णां शुकपरीधानां चलत्कुण्डलचञ्चलाम् ॥ १७१ ॥
हीरकद्युतिसङ्काशां दशदिग्ज्योतिरुज्ज्वलाम् ।
हास्ययुक्तां प्रसन्नास्यां नवयौवनसंयुताम् ॥ १७२ ॥
शरत्पूर्णशशिमुखीं पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
शङ्ख-कङ्कण-केयूर-नानाभरण-मोहिनीम् ॥ १७३ ॥
नानालावण्यसंयुक्तां शुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीम् ।
पञ्चाशद्वर्णहाराढ्यां शान्तां सामसमाश्रयाम् ।
साममन्त्रं प्रवक्ष्यामि ह्यतिगुह्यं परात्परम् ।
ओं ओं ओं सामवेद स्वाहा ओं ओं ओं ॥ १७४ ॥

चतुर्भुज, चारमुखवाली, स्फटिक के समान स्वच्छ, श्वेत कमल पर आसीन, सदा कमल के गन्ध के समान सुगन्धवाली, अभय वर धारण करने वाली, तथा वीणा एवं पुस्तक को धारण करनेवाली, गुंजार करते भ्रमर के समान नील कान्तिवाली, तीन नेत्र से युक्त, भाल में सिन्दूर के तिलक से शोभित, नेत्रों में कज्जल लगायी हुई, रेशमी कृष्ण-वस्त्र धारण की हुई, कानों में हिलते हुए कुण्डल धारण की हुई, हीरे की कान्ति के समान दसों दिशाओं को चमकाती हुई, मन्द हास्ययुक्त, प्रसन्न मुखवाली, नवीन युवावस्थावाली, शरत्कालीन चन्द्र के समान मुखवाली, उन्नत स्तनवाली, शंख, कंकण, केयूर आदि आभूषणों को धारण करनेवाली, सुन्दरता की मानो खान, शुक्ल उत्तरीय (दुपट्टा) धारण की हुई, पचास वर्णों की मानो माला से युक्त, शान्त सामवेद समाश्रित ऐसे अत्यन्त गुप्त से गुप्त साम मन्त्र का निरूपण करते हैं। ओं ओं ओं सामवेद स्वाहा ओं ओं ओं ॥ १६९-१७४ ॥

गौराङ्गीं दीर्घनयनां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम् ।
रक्तपद्मसमासीनां रक्तांशुकपरिच्छदाम् ॥ १७५ ॥
वरदानरतां देवीं वीणापुस्तकधारिणीम् ।
दिव्यगन्धमयीं नित्यां शङ्खकङ्कणमण्डिताम् ॥ १७६ ॥
मुक्ताहारलतोपेतां कदम्बकोरकस्तनीम् ।
पूर्णचन्द्रमुखीं पूर्णां पीतवस्त्रोत्तरीयिणीम् ॥ १७७ ॥

सर्वशास्त्रमयीं विद्यां यजुर्वेदसमाश्रयाम् ।
मन्त्रमस्य प्रवक्ष्यामि शृणु सुरथ भूपते ।
ओं ओं ओं यजुर्वेद स्वाहा ओं ओं ओं । १७८ ॥

गौर वर्णवाली, दीर्घ नेत्रवाली, रक्तकमल पर आसीन, चार भुजा एवं चार मुखवाली, रेशमी रक्त वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाली, वरदान में तत्पर, वीणा, पुस्तक धारण की हुई, दिव्य सुगन्ध से युक्त, शंख, कंकण को धारण करने वाली, मोती की माला से सुशोभित, कदम्ब के कोरक के समान स्तनवाली, पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली, पीतवर्ण के उत्तरीय वस्त्र को धारण की हुई, सर्वशास्त्रस्वरूपा, यजुर्वेद से समाश्रित, यजुर्वेद के मन्त्र का निरूपण करते हैं। 'ओं ओं ओं यजुर्वेद स्वाहा, ओं ओं ओं' ॥ १७५-१७८ ॥

रक्ताङ्गीं पीतवसनां रक्तपद्मासनस्थिताम् ।
रक्ताभरणसंयुक्तां रक्तगन्धप्रलेपिताम् ॥ १७९ ॥
बन्धनीरक्तनयनां कृष्णवस्त्रोत्तरीयिणीम् ।
चतुर्भुजां सुचतुरां चतुर्वक्त्रां बृहत्कटीम् ॥ १८० ॥
सिन्दूरतिलकोद्दीप्तां दीर्घकेशीञ्च सुस्तनीम् ।
सर्वाङ्गसुभगां भव्यां सर्वसौभाग्यशालिनीम् ॥ १८१ ॥
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु गुह्यं नृपोत्तम ।
ओं ओं ओं ऋग्वेद स्वाहा ओं ओं ओं ॥ १८२ ॥

रक्तवर्ण के शरीर वाली, पीत वस्त्र धारण करने वाली, रक्त कमल पर आसीन तथा रक्त आभूषणों से सुशोभित, रक्त गन्ध समस्त शरीर में लगायी हुई, रक्त नेत्रवाली, कृष्ण वर्ण का उत्तरीय वस्त्र धारण करनेवाली, चार भुजा एवं चार मुखवाली, विशाल कटिवाली, भालस्थल में सिन्दूर का तिलक धारण की हुई, लम्बे-लम्बे केश वाली, सुन्दर स्तनवाली, सर्वाङ्ग सुन्दरी, समस्त सौभाग्य से युक्त ऐसे ऋग्वेद मन्त्र के ध्यान का निरूपण करते हैं। ओं ओं ओं ऋग्वेद स्वाहा ओं ओं ओं ॥ १७९-१८२ ॥

अधुना मनुजश्रेष्ठ अथर्वं कथयामि ते ।
दलिताञ्जनसङ्काशां कृष्णवस्त्रपरिच्छदाम् ॥ १८३ ॥
कृष्णपद्मासनगतां चतुरां चतुराननाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम् ॥ १८४ ॥
कटाक्षविशिखोपेतनयनत्रयसंयुताम् ।
कृष्णाभरणसंयुक्तां कृष्णगन्धप्रलेपिताम् ॥ १८५ ॥

कृष्णपद्मसमासीनां कृष्णपुष्पोपशोभिताम् ।
पञ्चाशद्वर्णहाराढ्यामथर्वं समुपास्महे ॥ १८६ ॥
शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानेन धारय ।
ओं ओं ओं अथर्ववेद स्वाहा ओं ओं ओं ॥ १८७ ॥

हे सुरथ, अब अथर्ववेद के ध्यान का निरूपण करते हैं—अंजन के समान कृष्ण वस्त्र धारण की हुई, चार मुख एवं चार भुजा वाली, तीन नेत्र वाली, सिन्दूर के तिलक से शोभित, तिरछी चितवन वाली, कृष्ण आभूषणों से सुशोभित, काले रंग का चन्दन लगायी हुई, काले कमल पर आसीन, काले रंग के पुष्प से सुशोभित, पचास वर्ण से सुशोभित माला को धारण की हुई अथर्ववेद का ध्यान करते हैं। मन्त्र को कहता हूँ, अत्यन्त सावधानी से सुनो। ओं ओं ओं अथर्ववेद स्वाहा ओं ओं ओं ॥ १८३-१८७ ॥

एतत्ते कथितं सर्वं ध्यानमन्त्रं पृथक् पृथक् ।
गायत्री च स्वयं वेदः प्रणवत्रयसंयुतः ॥ १८८ ॥
गायत्री यदि पुंस्का स्याद् वेदमाता तथापि सा ।
परंब्रह्ममयं तत्त्वं सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ १८९ ॥
एतत्तत्वं विना राजन् द्विजश्च शूद्रवत् सदा ।
वेदध्यानं वेदमन्त्रं ह्यज्ञात्वा शूद्रवद् द्विजः ॥ १९० ॥
विशेषतः कलियुगे शूद्रतुल्यो द्विजो भवेत् ।
तस्मादवश्यं ज्ञातव्यं ध्यानमन्त्रं नृपोत्तम ॥ १९१ ॥

हे सुरथ, इस प्रकार हमने तुम्हें चारों वेद के ध्यान का निरूपण किया। यह गायत्री स्वयं वेदरूपा है तथा तीन प्रणव से युक्त है। यह गायत्री वेदरूप होने से पुरुष भी है और वेद की माता भी है। यही परब्रह्ममय है एवं समस्त तन्त्रों में उत्तम तन्त्ररूप भी है। हे राजन्, जिस ब्राह्मण के पास यह गायत्री-तत्त्व नहीं है वह शूद्र के समान है। जो ब्राह्मण वेद का ध्यान तथा वेदमन्त्र को नहीं जानता वह भी शूद्र के समान है। विशेषकर इस कलियुग में ब्राह्मण इस तत्त्व के बिना शूद्रवत् है। अतः हे नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणों को इस तत्त्व (अथवा ध्यानमन्त्र) का ज्ञान अवश्य रखना चाहिये ॥ १८८-१९१ ॥

प्रणवे ह्यधिकारी स्याद् गायत्रीषु तदैव हि ।
मालया न जपेन्मन्त्रं गच्छन् पथि कदाचन ॥ १९२ ॥

जिस समय ब्राह्मण प्रणव का अधिकारी होता है तभी उसे गायत्री का भी अधिकार होता है। इसलिए मार्ग में चलते हुए, माला फिराते हुए गायत्री का जप कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ १९२ ॥

जप्त्वा मन्त्रं मूढः सर्पयोनिषु जायते।
करमालासु जप्तव्यं गच्छन् पथि नृपोत्तम ॥ १९३ ॥

जो मूर्ख इस प्रकार जप करता है वह सर्पयोनि को जन्मान्तर में प्राप्त होता है। परन्तु हे राजन्, मार्ग में चलते हुए करमाला से जप करने में कोई भी हानि नहीं है ॥ १९३ ॥

मालया पथि जप्त्वा वै यथा हानिः प्रजायते।
वेदमन्त्रविहीनश्च तथा याति पराभवम् ॥ १९४ ॥

जिस प्रकार मार्ग में चलते हुए माला से जप करने में हानि होती है उसी प्रकार वेदमन्त्र से विहीन ब्राह्मण अपने वर्चस्व का नाश करता है ॥ १९४ ॥

उपविश्य जपेन्मन्त्रं मालया नृपनन्दन।
गायत्री च तथा सन्ध्या वेदध्यानं तथा मनुम् ॥ १९५ ॥
कलिकाले महाराज ब्राह्मणेषु प्रशस्यते।
अन्यत् सर्वं वेदमतं कलौ विवर्जयेद्द्विजः ॥ १९६ ॥

हे राजन्, इसलिए बैठकर माला से गायत्री का जप करना चाहिए। तथा सन्ध्या एवं वेद का पारायण भी बैठकर ही करना चाहिए। इस कलिकाल में गायत्री जप, सन्ध्या तथा वेद पारायण करना अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसके सिवाय अन्य सभी का परित्याग करे ॥ १९५-१९६ ॥

परस्य ब्रह्मणो बिन्दुर्वेदमाता तथैव हि।
एतत् तत्त्वमविज्ञाय ब्राह्मणः शूद्रवत् सदा ॥ १९७ ॥

परब्रह्म बिन्दुरूप तथा वेदमाता गायत्री के तत्त्व को नहीं जानने वाले ब्राह्मण शूद्र के समान होते हैं ॥ १९७ ॥

वेदपाठे ब्राह्मणस्य नाधिकारः कलौ युगे।
सोऽहं स्नानं विना राजन् यथा स्नानं वृथा भवेत् ॥ १९८ ॥

ऐसे ब्राह्मण कलियुग में वेदपाठ करने के अधिकारी नहीं हैं। हे राजन्, जिस प्रकार सोऽहं स्नान के विना स्नान व्यर्थ होता है उसी प्रकार गायत्री तत्त्व ज्ञान के बिना वेद पाठ का अधिकार ही नहीं है ॥ १९८ ॥

निरञ्जनः सन् महाराज जले शिरसि एकधा।
हंसेन पुटितं कृत्वा इष्टमन्त्रं स्मरेत् सकृत् ॥ १९९ ॥

हे महाराज, जल में मस्तक डुबाकर निरंजन होता हुआ हंस से सम्पुटित कर एक बार इष्ट मन्त्र (गायत्री) का जप करे ॥ १९९ ॥

इष्टेन पुटितं हंसं द्वितीयं स्नानमाचरेत्।
हंसेन पुटितमिष्टं त्रिस्नानं मनुजेश्वरः ॥ २०० ॥

इसी प्रकार इष्ट मन्त्र से हंस को सम्पुटित कर द्वितीय स्नान करे। तथा हंस से इष्ट को सम्पुटित कर तृतीय स्नान करे ॥ २०० ॥

[1]……नः पुटितं सर्वं हंसमिष्टं यथा तथा।
सोऽहं स्नानमिदं प्रोक्तं जीवस्नानमिदं नृप ॥ २०१ ॥

(इसके आगे का पाठ त्रुटित है) इसी प्रकार हे राजन्, हंस और इष्ट दोनों से सम्पुटित कर स्नान करने को ही हंसस्नान एवं जीवस्नान कहते हैं ॥ २०१ ॥

अतः स्नानमिदं राजन् कथितमतिगोपनम्।
सोऽहं स्नानेन राजेन्द्र कोटितीर्थफलं लभेत् ॥ २०२ ॥
अनेनैव हि स्नानेन त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्।
सोऽहं स्नानेन गायत्र्याः स्नानं भवति भूपते ॥ २०३ ॥

हे सुरथ राजा, इस अत्यन्त गुप्त स्नान का निरूपण मैंने किया। इसी सोऽहं स्नान से मनुष्य करोड़ों तीर्थ के स्नान का फल प्राप्त करता है। इसी स्नान से मनुष्य अपने तीन करोड़ कुल का उद्धार करता है। इसी सोऽहं स्नान से गायत्री इष्ट का भी स्नान होता है ॥ २०२-२०३ ॥

सोऽहं स्नानं विना राजन् कुशताम्रेण किं पुनः।
किं पुनः स्वर्णतोयेन शङ्खतोयेन किं पुनः ॥ २०४ ॥

सोऽहं स्नान के विना हे राजन्, जल में कुशा एवं ताम्र स्थापित कर स्नान करना तथा स्वर्ण जल से स्नान करना, शंख जल से स्नान करना व्यर्थ है ॥ २०४ ॥

सोऽहं स्नानेन चात्मीयमात्मनः स्नानमुच्यते।
अत एव महाराज स्नानमित्यभिधीयते ॥ २०५ ॥

अपने को सोऽहं स्नान से ही आत्मीय स्नान होता है। अतएव हे महाराज, इस सोऽहं स्नान को ही स्नान कहते हैं ॥ २०५ ॥

सोऽहं स्नानं विना राजन् बाह्यस्नानं वृथा यथा।
शिवहीनं तथा मन्त्रं जप्त्वा निरयमाप्नुयात् ॥ २०६ ॥
राममन्त्रं कृष्णमन्त्रं शिवहीनं वृथा यथा।
तथा च चरणैर्हीनं तन्मन्त्रं विफलं यथा ॥ २०७ ॥
आदिशून्यं पादहीनमन्तःशून्ये तथैव च।
शिवहीनं भवेन्मन्त्रं जप्त्वा निरयमाप्नुयात् ॥ २०८ ॥

जिस प्रकार सोऽहं स्नान के विना बाह्य स्नान व्यर्थ होता है, उसी प्रकार शिव मन्त्र से हीन और मन्त्रों का जप करना व्यर्थ होता है। शिव मन्त्र के बिना राम, कृष्ण आदि का मन्त्र व्यर्थ होता है, जिस प्रकार कि चरण के विना वेद मन्त्र निष्फल होता है। जिस प्रकार आदि शून्य, पाद हीन तथा अन्तशून्य मन्त्र व्यर्थ होता है, उसी प्रकार शिवहीन मन्त्र निष्फल होता है ॥ २०६-२०७ ॥

---

१. एतच्चिह्नितस्थलं दुष्प्राप्यम्।

राममन्त्रे कृष्णमन्त्रे इति राजन् प्रशस्यते ।
न शिवे शस्यते राजन् शक्तिमन्त्रे न दूषणम् ॥ २०९ ॥

परन्तु शिव मन्त्र के बिना राम, कृष्ण आदि के ही मन्त्र व्यर्थ होते हैं, किन्तु शक्ति के मन्त्र जाप में यदि शिव का मन्त्र न भी जपा जाय तो भी किसी प्रकार का दोष नहीं है ॥ २०९ ॥

दुरदृष्टवशाद्राजन् लब्ध्वा मूर्खगुरोर्मुखात् ।
प्रणवैः पुटितं कृत्वा लब्ध्वा चान्यगुरोर्मुखात् ॥ २१० ॥
प्रजप्य फलमाप्नोति सर्वावयवसंयुतम् ।
गायत्र्याः स्नानमात्रेण तत्त्वस्नानं प्रजायते ॥ २११ ॥

हे राजा सुरथ, अदृष्ट वश अथवा मूर्ख गुरु के मुख से भी यदि गायत्री का उपदेश हो तो उसे प्रणव से सम्पुटित कर चाहे वह अन्यगुरु से भी प्राप्त हुआ हो, तब भी जप करने से उसका फल प्राप्त होता है। गायत्री के स्नान मात्र से ही तत्त्व स्नान का फल प्राप्त होता है ॥ २१०-२११ ॥

मनोजीवात्मनः शुद्धिस्तत्त्वषोढा प्रजायते ।
शिवशक्तिसमायोगादन्तःसन्ध्या यथाऽऽत्मनः ॥ २१२ ॥

उस तत्त्व स्नान से मन एवं जीवात्मा की शुद्धि होती है। शिव और शक्ति के समायोग से आत्मा की अन्तःसन्ध्या होती है ॥ २१२ ॥

अन्तःसन्ध्यां विना राजन्! बाह्यसन्ध्या वृथात्मनः ।
तान्त्रिकी वैदिकी सन्ध्या बाह्यसन्ध्या प्रकीर्तिता ॥ २१३ ॥

अन्तःसन्ध्या के बिना बाह्यसन्ध्या व्यर्थ होती है। तान्त्रिकी एवं वैदिकी सन्ध्या को बाह्यसन्ध्या कहते हैं ॥ २१३ ॥

अन्तःस्नानं तथा सोऽहं सर्वतीर्थमयं नृप ।
छागमेषं महाराज कृतादियुगचतुष्टये ॥ २१४ ॥
विशेषतः कलियुगे प्रशस्तं नृपनन्दन ।
बहुभिर्बलिदानेन पूजयेत् क्षत्रजातिकः ॥ २१५ ॥

हे राजन्! अन्तःस्नान तथा सोऽहंस्नान करने से समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है, । सत्ययुगादि में एवं विशेषतः कलियुग में छाग (बकरा) का ही बलिदान प्रशस्त है। इसी प्रकार क्षत्रियों को चाहिये कि वे बहुत से बकरों का बलिदान करें ॥ २१४-२१५ ॥

सत्ये सकृन्महाराज त्रेतायां द्विगुणं तथा ।
द्वापरे त्रिगुणं दद्यात् कलौ चतुर्गुणं बलिम् ॥ २१६ ॥

सत्ययुग में एक गुना, त्रेता में दो गुना, द्वापर में तिगुना तथा कलि में चौगुना बलिदान करे ॥ २१६ ॥

कृतादिषु युगे विप्रो बलिं दद्यादशक्तितः ।
कलिकाले महाराज दद्याद् विप्रो चतुर्गुणम् ॥ २१७ ॥
कृष्णच्छागद्वयं राजन् तथा च महिषद्वयम् ।
सकृद्बलिरिदं प्रोक्तं दरिद्रं केवलं सकृत् ।
यथा विभवमात्रेण वित्तशाठ्यं परित्यजेत् ॥ २१८ ॥

सत्ययुगादि में तो अशक्ति से ब्राह्मण बलिदान करे, परन्तु कलियुग में तो चौगुना करे। या तो दो काले बकरे का अथवा दो महिष का बलिदान करे। इसे सकृत् बलि कहते हैं। अपने विभव के अनुसार कंजूसी न करे ॥२१७-२१८॥

श्रीसुरथ उवाच—

ब्रह्मपुत्र नमस्तुभ्यं कृपया कथ्यतां द्विज ।
किमत्र पशुहत्यायां बलिदानेन ब्राह्मणः ॥ २१९ ॥
भविष्यति महाभाग कृपया सत्वरं वद ।
दासोऽस्मि तव विप्रेन्द्र मनो मे दूयते सदा ।
त्वमेव संशयच्छेत्ता संशयं छिन्धि मे द्विज ॥ २२० ॥

राजा सुरथ ने कहा कि हे ब्रह्मपुत्र नारद! आप को नमस्कार है। अब आप इसे बताने की कृपा करें कि यदि ब्राह्मण बलिदान करे तो उसे हत्या का दोष लगता है या नहीं? इस सन्देह को निवारण करने की कृपा करें। कारण कि आप के बिना इस सन्देह का निवारण और कौन कर सकता है ॥ २१९-२२० ॥

नारद उवाच—

धन्यस्त्वं सुरथो धन्यः शैवस्त्वं हि शिवः स्वयम् ।
शक्तिस्त्वं हि स्वयं शक्तिर्विष्णुस्त्वं वैष्णवोत्तमः ॥ २२१ ॥
भवानीपूजनफलादद्य त्वं वैष्णवाग्रणीः ।
अद्य मे सफलं जन्म तव दर्शनमात्रतः ॥ २२२ ॥

नारद जी ने कहा कि हे सुरथ, तुम शिव हो, तुम शक्ति हो, तुम वैष्णव हो, अतः तुम धन्य हो। भवानी के ही पूजन के कारण तुम आज श्रेष्ठ वैष्णव हुए हो। अरे तुम्हारे दर्शन मात्र से ही आज मेरा जन्म सफल हुआ है ॥ २२१-२२२ ॥

प्रत्यहं तव राजेन्द्र अश्वमेधसहस्रशः ।
भवन्ति निश्चयं यज्ञा बलिदानप्रभावतः ॥ २२३ ॥
किं बहूक्त्या महाराज त्वमेव वैष्णवाग्रणीः ।
यत्र यत्र पुराणेषु निषेधं कुरुते बलेः ॥ २२४ ॥
तत्तद्बौद्धमतं राजन् न च वेदेषु सम्मतम् ।
यत् तु पुराङ्गनाख्याने बलिदानं निषिध्यते ॥ २२५ ॥

तत् तु बौद्धमतं राजन् न च वेदेषु सम्मतम् ।
त्रिविधा बलयः प्रोक्ता उत्तमाऽधम-मध्यमाः ॥ २२६ ॥

हे राजन्, इस बलिदान के प्रभाव से प्रतिदिन आप को हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इसी बलिदान के प्रभाव से ही आप श्रेष्ठ वैष्णव माने जाते हो। और जिन-जिन पुराणों में बलिदान का निषेध किया गया है, वह तो बौद्धमत है। वेद में कहीं भी बलिदान का निषेध नहीं है। पुरंजन के आख्यान में जो बलिदान का निषेध है वह भी बौद्धमतानुयायियों को ही अभीष्ट है, वेद मे बलिदान का निषेध कहीं भी नहीं किया गया है। यह बलि उत्तम, मध्यम, अधम इस भेद से तीन प्रकार की मानी गयी है ॥ २२३-२२६ ॥

उत्तमश्चोत्तमं दद्यान्मध्यमो मध्यमं तथा ।
अधमोऽप्यधमं दद्यादित्युक्तस्त्रिविधो बलिः ॥ २२७ ॥

उत्तम पुरुष (बड़े लोगों को) उत्तम तथा मध्यवर्ग वालों के लिए मध्यम एवं निकृष्ट श्रेणी वालों के लिये अधम बलि का विधान कहा गया है ॥ २२७ ॥

कृष्णच्छागद्वयं राजन् ! महिषद्वितयं तथा ।
शुक्लाष्टम्याञ्च शरदि न दातव्यं कदाचन ॥ २२८ ॥

शारदीय नवरात्र में शुक्ल अष्टमी को दो बकरे तथा दो महिष की बलि कभी भी देवी को समर्पित न करे ॥ २२८ ॥

एको वाऽप्यथवाऽनेकः कुष्माण्डो दीयते यदि ।
अधमः कथ्यते देवि ह्यधमेऽप्यधमा गतिः ॥ २२९ ॥

एक अथवा अनेक कूष्माण्ड की बलि जो लोग प्रदान करते हैं वह अधम बलि मानी जाती है। इस प्रकार की बलि का फल भी अधम ही होता है ॥ २२९ ॥

दशसंख्या बलिर्यत्र मध्यमस्तेन कथ्यते ।
सात्त्विको उत्तमा पूजा यदि दद्यान् महाबलिम् ॥ २३० ॥

जहाँ दस संख्या की अर्थात् दस बकरे या महिष की बलि दी जाती है, उसे मध्यम बलि कहते हैं। सात्त्विक पूजन में उत्तम बलि देनी चाहिए ॥२३०॥

अष्टमीनवमीसन्धौ दद्याद् यत्नान्महाबलिम् ।
शतं सहस्रं लक्षं वा अयुतं कोटिकोटिशः ॥ २३१ ॥
शस्यते नृपतिश्रेष्ठ सात्त्विके पूजने बलिः ।
एकेन बलिदानेन चतुर्वर्गमवाप्नुयात् ॥ २३२ ॥

शत, सहस्र, लक्ष, अयुत तथा करोड़ों बलिदान अष्टमी-नवमी की सन्धि में अवश्य करना चाहिए। हे राजन्, सात्त्विक पूजन में इस प्रकार बलि प्रदान करना चाहिए। एक ही बलिदान से साधक चतुर्वर्ग (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति कर लेता है ॥ २३१-२३२ ॥

बहुभिर्बलिदानैस्तु परंब्रह्ममयो भवेत् ।
बहुभिर्बलिदानैस्तु जपयज्ञैस्तु भूपते ॥ २३३ ॥
क्रियते सात्त्विकी पूजा सात्त्विकी तेन कीर्तिता ।
दशभिः पशुभिः पूजा जपयज्ञे तथैव च ॥ २३४ ॥
या कृतौ शारदी पूजा राजसी तेन कीर्तिता ।
बलिभिः पञ्चभिः पूजा तामसी तेन कीर्तिता ॥ २३५ ॥

उसी प्रकार अनेक बलि देने से तो साधक पर ब्रह्ममय बन जाता है। अनेक बलि तथा जप-यज्ञ से जो पूजा की जाती है, उसे ही सात्त्विकी पूजा कहते हैं। शरद् काल में जप-यज्ञ में दस पशुओं की बलि से जो पूजा की जाती है, वह राजसी पूजा कहलाती है। उसी प्रकर पाँच पशु की बलि से जो पूजा की जाती है वह तामसी पूजा कही जाती है ॥ २३३-२३५ ॥

सात्त्विकीपूजनफलाच्छुद्धसत्त्वात्मको भवेत् ।
वेदे बौद्धे विवादोऽस्ति वेदोक्तं प्रतिपालयेत् ॥ २३६ ॥

सात्त्विक पूजन करने से सात्त्विक फल प्राप्त है। यद्यपि इस प्रसंग में वेद में तथा बौद्ध मत में बहुत विवाद है तथापि बौद्धमत का परित्याग कर वेदमत का ही आश्रय लेना चाहिए ॥ २३६ ॥

बौद्धोक्तं राजशार्दूल दूरतः परिवर्जयेत् ।
बौद्धो वदति राजेन्द्र! ईश्वरो नास्ति नास्ति वै ॥ २३७ ॥
अहमेवेश्वरः साक्षादिति बौद्धोऽब्रवीद्वचः ।
दशदण्डाभ्यन्तरे राजन् ! भोजनं स्वर्गमुच्यते ॥ २३८ ॥

हे राजन्, वेदमत के समक्ष बौद्धमत का सर्वदा परित्याग करना चाहिए। कारण कि बौद्धमतावलम्बी ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते। उनका कहना है कि ईश्वर, ईश्वर नहीं है, किन्तु हमी ईश्वर हैं। उनके यहाँ स्वर्ग, नरक कुछ भी नहीं है, किन्तु भोजन ही स्वर्ग है, कारण कि भोजन करने से मन तृप्त होता है ॥ २३७-२३८ ॥

.....त्यज्य आत्मता भोगे नष्टः को वा हतो नृपः ॥ २३९ ॥
.................................त्यक्त्वा स्थानं प्रलेभिरे ।
कुतः स्वर्गो कुतो भोगो नष्टः को वा हतो नृप ॥ २४० ॥
त्यक्त्वा देहं ययौ शक्तिर्मरणं तेन कथ्यते ।
इति बौद्धस्य राजर्षे यथा वाक्यमलोकवत् ॥ २४१ ॥

(इसके आगे के कुछ श्लोक त्रुटित हैं) वे लोग कहते हैं कि—शरीर के नष्ट होने पर सभी नष्ट होता है, अतः आत्मतृप्ति ही स्वर्ग सुख है—और ये स्वर्ग की कल्पना आदि यह सभी सनातनियों का ढोंग है। (यहाँ का पाठ भी खण्डित है) शक्ति नहीं रही, इसीलिए शरीर भी नहीं रहा—इसे वे लोग मरण कहते हैं। इस प्रकार बौद्ध मत अपने मत से मिथ्या है ॥ २३६-२४१ ॥

यथा वह्नेः शिखाध्वंसं सर्वेषां ध्वंस उच्यते।
इहैव नरकः स्वर्गः का कथा परजन्मनि ॥ २४२ ॥

बौद्धों का कहना है कि जिस प्रकार दीपक (वह्नि) की शिखा नष्ट होने से सभी का ध्वंस होता है, उसी प्रकार इस जन्म में ही स्वर्ग, नरक सब कुछ है, अन्य जन्म में नहीं। कारण कि शरीर-सुख को ही स्वर्ग एवं शरीर दुःख को ही वे लोग नरक मानते हैं। और वे लोग पर जन्म को मानते ही नहीं ॥ २४२ ॥

नारद उवाच—

आत्मानन्दमयो जीवः कला श्रीरन्तरात्मनः।
सदा जीवेति जीवेति कथ्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥ २४३ ॥

नारद जी ने कहा कि यह जो आत्मानन्दमय है वही जीव है और अन्तरात्मा की कला है। इसीलिए तत्त्वज्ञानी लोग निरन्तर उसे जीव-जीव (जियो जियो) इस प्रकार कहते हैं, अतः उसका नाम जीव ऐसा हुआ ॥ २४३ ॥

तत् कथमात्मनो ध्वंसो बौद्धवाक्येन भूपते।
शिखाध्वंस इति न्यायादिति बौद्धस्य मूर्खता ॥ २४४ ॥

हे राजन्! आप ही बताइए कि जब बौद्धों के मत से (क्योंकि वे तो शरीर को ही सर्वस्व मानते हैं, आत्मा उनके यहाँ है ही नहीं) आत्मध्वंस नहीं होता तो आत्मा का, ध्वंस किस प्रकार हुआ। उसी प्रकार 'वह्नि की शिखा ध्वंस' कहना यह भी उनकी मूर्खता है ॥ २४४ ॥

कृते त्रेतायुगे चैव द्वापरे नृपनन्दन।
विधिवत् पूजयेत् वेदं गन्धपुष्पादिभिर्द्विजः ॥ २४५ ॥

हे राजन्! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में ब्राह्मण को चाहिए कि वे गन्ध, पुष्पादि से अत्यन्त विधि-विधान से वेद का पूजन करें ॥ २४५ ॥

कलिकाले महाराज ध्यानमात्रं प्रशस्यते।
ध्यानं कृत्वा जपेन् मन्त्रं दशधा प्रणवं नृप ॥ २४६ ॥

परन्तु हे राजा सुरथ, कलिकाल में तो केवल ध्यान मात्र से सब सिद्ध होता है अर्थात् वेद का पूजन करने की आवश्यकता नहीं। अतः ध्यान कर दस प्रणव से युक्त मन्त्र का जप करे ॥ २४६ ॥

प्रातःकाले जपेन्मन्त्रं प्रणवं ब्राह्मणोत्तमः।
प्रणवं वेदमन्त्रं स्यात् त्रिगुणं नृपनन्दन ॥ २४७ ॥

हे राजन्! तीन प्रणव लगाने से ही वेद मन्त्र बन जाता है, अतः ब्राह्मण को चाहिए कि वह प्रातःकाल प्रणव युक्त मन्त्र (गायत्री) का जप करे ॥ २४७ ॥

प्रणवे नाधिकारोऽस्ति वेदध्यानं विना नृप।
सन्ध्यायां नाऽधिकारोऽस्ति प्रणवैर्विहीनं तथा ॥ २४८ ॥

हे राजन्, जिस प्रकार वेद के ध्यान किये विना प्रणव में अधिकार नहीं है। उसी प्रकार प्रणव के विना सन्ध्या करने का भी अधिकार नहीं है ॥ २४८ ॥

किञ्चित् किञ्चित् बौद्धमतं सर्वशास्त्रेषु पल्लवम्।
आदाय पल्लवमत..................परित्यजेत् ॥ २४९ ॥

सभी शास्त्रों में पल्लव रूप से कुछ-कुछ बौद्धमत प्रविष्ट ही है, अतः पल्लव मत का परित्याग करे (यहाँ का भी पाठ खण्डित है) ॥ २४९ ॥

इह जन्मनि पापिष्ठः सर्वधर्मबहिर्मुखः।
स पापी जायते प्रेतः परजन्मनि निश्चयः ॥ २५० ॥

जो मनुष्य इस जन्म में पापी एवं समस्त धर्म से बहिर्मुख है, वही मनुष्य अन्य जन्म में भी निश्चय ही प्रेत होता है ॥ २५० ॥

चतुर्दशपल्लवयुतो वेदो नित्यः सनातनः।
षट्शाखासहितो वेदस्तत्त्वशाखाडषड्ङ्कः ॥ १५१ ॥

यह वेद नित्य सनातन और चौदह पल्लव से युक्त है। तथा छह शाखा से भी युक्त है और विकसित पुण्य वाला है ऐसा यह अद्भुत तत्त्व युक्त गायत्री है ॥ २५१ ॥

अम्लानकुसुमं तत्र गायत्रीतत्त्वमद्भुतम्।
फलं तस्य महाराज ब्रह्माण्डं कोटिकोटिशः ॥ २५२ ॥
नित्यं सनातनो वृक्षो मूलं तस्य च कुण्डली।
ज्ञानात्मसहितं राजन् मातृकाबीजसंयुतम्।
ये गुणाः सन्ति ब्रह्माण्डे तस्य पत्राणि नाऽन्यथा ॥ २५३ ॥

और उस वृक्ष का फल रूप अनेक कोटि ब्रह्माण्ड है, ऐसा यह नित्य सनातन वृक्ष है—कुण्डली उसका मूल है, ज्ञानात्मसहित मातृका उस वृक्ष का बीज है। इस ब्रह्माण्ड में जितने भी गुण हैं वे सभी उस वृक्ष के पत्र हैं ॥ २५२-२५३ ॥

.... न वेदेन मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
पुरा प्राचीनवृत्तान्तं पुराणं त्रिगुणात्मकम् ॥ २५४ ॥

(इसके आगे का श्लोक खण्डित है) पूर्व समय में पुराण सत्त्व, रज, तम रूप से त्रिगुणात्मक है। इस प्रकार वेद में कहा गया है ॥ २५४ ॥

रजस्तमात्मकं त्यक्त्वा यदि सत्त्वं प्रशस्यते।
चतुर्दशस्कन्धहत्यां करोति स च पामरः॥ २५५॥

जब रजस्तमात्मक का परित्याग कर सत्त्व ही रह जाता है, तब वह पामर, चतुर्दश स्कन्ध की हत्या करता है॥ २५५॥

एकस्य बहवः पुत्राः स्वधर्मप्रतिपालकाः।
तेषां मध्ये एकपुत्रश्चौर्यवृत्तिरतः सदा॥ २५६॥

एक मनुष्य के अनेक पुत्र अपने धर्म की रक्षा करने वाले होते हैं, परन्तु उन पुत्रों में से एक पुत्र चौर वृत्ति में सदा रत रहने वाला भी होता है॥२५६॥

अग्राह्यं चौरवाक्यं तत् साधुवाक्यं प्रशस्यते।
वेदपुत्रा वेदहरशास्त्राणि च चतुर्दश॥ २५७॥
चौरो वै सर्वशास्त्राणां मध्ये बौद्ध इति स्मृतः।
अत एव महाराज न शास्त्रेऽप्येकवाक्यता॥ २५८॥

उस समय उस चौर का वाक्य अग्राह्य होता है और साधु-वाक्य ग्राह्य होता है। उसी प्रकार वेद शास्त्र के चौदह पुत्र हैं, परन्तु उनमें एक पुत्र परम नास्तिक बौद्ध भी है। अतएव हे राजन्, शास्त्रों में भी एकवाक्यता नहीं होती॥ २५७-२५८॥

धर्मे वेदा महाराज प्रमाणं नित्यमुच्यते।
धर्मविपर्ययो वेदे बौद्धवाक्यं यथा तथा॥ २५९॥

हे महाराज, जिस प्रकार धर्म में वेद नित्य प्रमाणरूप माना जाता है। उसी प्रकार वेद में धर्मविपर्यय रूप बौद्ध वाक्य भी अप्रामाणिक माना जाता है॥ २५९॥

अतो बौद्धेति राजेन्द्र गीयते तन्त्रकोविदैः।
बलिदानं वेदसिद्धं निषिद्धं बौद्धवाक्यतः॥ २६०॥

अतएव हे नृपश्रेष्ठ, तन्त्रज्ञ लोग ऐसे मत को बौद्ध मत कहते हैं। बलिदान तो वेदवाक्य से सिद्ध है तथा बौद्ध वाक्य से निषिद्ध है॥ २६०॥

बौद्धवाक्यं परित्यज्य वेदमार्गे प्रपूजयेत्।
निर्माय गोमयं पिण्डं पौषे पौषप्रपूजनम्॥ २६१॥

इसलिए बौद्धवाक्य का परित्याग कर वेदमार्ग का पालन करना चाहिए। गोमय का पिण्ड बनाकर पौष में पौष का पूजन करे॥ २६१॥

येन यत् क्रियते धर्मः स्त्रीसपर्य्यापरम्परा।
सर्वं वेदमयं राजन् तत्र निद्रां परित्यजेत्॥ २६२॥

अपने कुल परम्परा के अनुसार जो कार्य किया जाय, वही धर्म है, वही वेद है, उसमें आलस्य रहित होकर कार्य करे॥ २६२॥

अत एव महाराज! शरीरे तव विद्यते।
पशुहत्याकृतं पापं मांसभक्षणकारणम्॥ २६३॥
विद्यते तव यत् पापं प्रायश्चित्तं ब्रवीमि ते।
लक्षच्छागबलिं दत्त्वा तत् पापं मार्जयाऽधुना॥ २६४॥

इसलिए हे राजन, आपके शरीर में केवल मांसभक्षणकृत पशुहत्यादिक जितने भी पाप हैं, उनका प्रायश्चित्त बता रहे हैं। इस समय आप का यही कर्तव्य है कि एक लाख बकरे की बलि देकर निष्पाप बन जाइए॥२६३-२६४॥

श्रीदेव उवाच—

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो नारदो ब्रह्मनन्दनः।
ततः सुरथराजर्षिः सम्पूज्य बलिदानतः॥ २६५॥
निष्पापः सुरथो भूत्वा सशरीरो दिवं गतः।
सस्त्रीकः स महाराजः प्रययौ स्वर्गमन्दिरम्॥ २६६॥

श्री महादेव जी ने कहा कि इस प्रकार कहकर, ब्रह्मा के पुत्र नारद जो अपने लोक को चले गये। उसके बाद राजा सुरथ ने एक लाख छाग की बलि देकर देवी का सविधि पूजन किया जिससे निष्पाप होकर सुरथ अपनी भार्या के सहित स्वर्ग लोक को प्राप्त हुआ॥ २६५-२६६॥

तथापि सुरथस्कन्धो ववृषे पथि पापतः।
स्कन्धे विस्फोटकमभूत् कृमियुग्मं नृपस्य च॥ २६७॥
विस्फोटकविषज्वाला कृमिज्वालाऽथ जायते।
बलिदानं विना हत्या ज्वालारूपा उपस्थिता॥ २६८॥

इतना होने पर स्वर्ग जाते हुए मार्ग में सुरथ के स्कन्ध से पाप फूट निकला तथा उसके कन्धे में विस्फोट (फोड़ा) हुआ, जिससे दो कीड़े निकले। विष्फोटक के विषज्वाला तथा कृमि की ज्वाला भयंकर रूप से हुई। यह सभी बलिदान के बिना ज्वाला रूप से उपस्थित हुई॥ २६५-२६८॥

एतस्मिन् समये दूत उवाच.....—

इयं मन्दाकिनी गङ्गा जलरूपा सनातनी॥ २६९॥
वेदोक्तविधिना राजन् स्नानमत्र कुरु द्रुतम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा सुरथः [1]॥ २७०॥
...विधिवत् स्नात्वा दिव्यदेहमवाप्नुयात्।
कृमिरूपाच्च स पापाद् दिव्यदेहमवाप्नुयात्॥ २७१॥

1. चिह्नितस्थलं दुष्प्राप्यम्।

इसी समय दूत ने कहा—(यहाँ से पाठ त्रुटित है) यह जलरूपा मन्दाकिनी गङ्गा स्वर्ग में स्थित है, अतः इसमें आप शीघ्र ही वेदोक्त विधान से स्नान करें। इस प्रकार दूत के वचन सुनकर राजा सुरथ ने उस गंगा में स्नान किया (यहाँ का पाठ भी त्रुटित है) जिस से राजा सुरथ ने दिव्य शरीर प्राप्त किया। तथा कृमिरूप भी उस का नष्ट हो गया एवं दिव्य शरीर प्राप्त किया ॥२६९-२७१॥

सुवर्णरथमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिवेष्टितः।
सस्त्रीकः सुरथो राजा प्रययौ स्वर्गमन्दिरम् ॥ २७२ ॥

पापाः प्रययुः शीघ्रं प्रययौ स्थानमुत्तमम्।
बलिदानं विना हत्या हत्या सर्वत्र गर्हिता।
प्रसङ्गात् कथिता हत्या बलिदानं विना यथा ॥ २७३ ॥

इति गायत्रीतन्त्रे आगमसन्दर्भे ज्ञानदर्पणे श्रीदेवदेवीसंवादे आत्मज्ञान-निरूपणे गायत्रीब्राह्मणे पञ्चमपटलः समाप्तः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् वह राजा सुरथ दिव्यांगनाओं से घिरा हुआ सुवर्ण के रथ पर बैठकर सस्त्रीक स्वर्ग लोक में गया। और उसके समस्त पाप भी नष्ट हो गये। बलिदान के बिना हत्या सर्वत्र निन्दित मानी गयी है। अत एव हम ने बलिदान के बिना हत्या को हत्या इस प्रकार कहा ॥ २७२-२७३ ॥

इस प्रकार 'देवरिया' मण्डलान्तर्गत-'मझौली राज्य' (सम्प्रति वाराणसी) निवासि
पण्डित श्रीसन्तशरणमिश्रात्मज पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्रिकृत
'तत्त्वदीपिका' नामक हिन्दी टीका में गायत्रीतन्त्र का
पाँचवाँ पटल समाप्त।

परिशिष्टम्

अथ दशमहाविद्यास्तोत्रम्

विगलित-वसना लोलित-रसना कटि-तट-बद्धकराली
समधिकचण्डा करधृतमुण्डा खण्डितचन्द्रकपाली।
माभैर्माभैरिति-भैरवरवसम्भासित-विबुधाली
पुरहर-हृदये विकच-कुवलये भ्रमति भ्रमरी *काली* ॥ १ ॥

नग्नस्वरूप, लपलपाती जीभ, कमर में कटार बाँधी हुई, प्रचण्ड क्रोधवाली, हाथ में मुण्डमाल लटकाये हुई, अर्धचन्द्र से सुशोभित मस्तक वाली, समस्त देवों से प्रचण्ड शब्दों में—'मत डरो, मत डरो' इस प्रकार घोषित करती हुई, खुली केशवाली, शंकर के हृदय पर चरण रखी हुई तथा भ्रमर के समान कृष्णवर्णा काली, रणाङ्गण में नृत्य कर रही है ॥ १ ॥

प्रलय-जलधि-जलदोदर-सोदर-रुचिर-चिरद्युतिहारा
खर्वाकृतिरहिवलयक-मूर्द्धज-ततिरति-संसृतिसारा।
घोराघोर-शिवारव-नन्दथरतिशय-शोणितधारा
जय दुस्तर-भवजलनिधितरणे भमतु भवतु खलु *तारा* ॥ २ ॥

कुण्डली लगाकर छोटे सर्पों से युक्त, जिनके केश लहरा रहे हैं, मानो मेघ के सहोदर प्रलयकालीन समुद्र की सुन्दर तरङ्गों को तिरस्कृत करनेवाली, सियार के समान अत्यन्त क्रूरशब्द से आनन्दित होनेवाली, रक्त से सनी हुई, अपार संसार-सागर के पार करने में पोत (जहाज) स्वरूप तारा जयन्त हों ॥ २ ॥

विधि-हरिहर-धृत-सिंहासनगत-शव-शिवनाभिमृणाले
निवससि शशिरुचिरुचिरे दिक्शुचि-दशने सुचिकुरजाले।
यौवन-गौरव-समधिक-सौरभशालिनि शिशुशशिभाले
जय षोड*शि* शङ्करि देवि शुभङ्करि सुरपुर-कुसुमितमाले ॥ ३ ॥

शव रूपसे स्थित शिव के नाभि-कमल युक्त, जिस सिंहासन पर आप विराजमान हैं उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों ही उठाये हुए हैं। चन्द्रमा के समान सुन्दर कान्ति, मृगसमूह के समान नेत्र, अपने मन्दहास्य से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली, युवावस्था के मद से अत्यन्त मदोन्मत्त, भालस्थल में बालचन्द्रको धारण करनेवाली, पारिजात पुष्पकी माला धारण की हुई, शुभकारी शङ्करी हे षोडशी देवि ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

केशरिपृष्ठे महति गरिष्ठे नियतं निवससि वामा
भुवनमनोहर-समधिकसुन्दर-रुचिरतिमध्यक्षामा ।
देवीकामविनाशन-कारणमपि पूरितजनकामा
त्वं भुवनेश्वरि जननि महेश्वरि भवसि गुणत्रयधामा ॥ ४ ॥

त्रैलोक्य में अनिन्द्य सुन्दरी, पतली कमरवाली ऐसी आप, अति विस्तृत केशरी (सिंह) के पीठ पर निरन्तर विराजमान हैं। तथा आप काम को नष्ट करने में समर्थ होने पर भी अपने भक्तों के सभी मनोरथ को पूर्ण करनेवाली हैं, अतः हे जननि, महेश्वरि देवी, आप त्रिगुणात्मिका शक्तिरूपा हैं ॥ ४ ॥

शोणितवर्णे शोणितवसने स्तनयुग-शोणितधारे
जपगुटिकावर-विद्याभयकर पद्मे त्रिभुवनसारे ।
मातर्भैरवभामिनि भैरवभानुसहस्रककारे
नृमुण्डमाले हास्यकराले त्वं गतिरिह संसारे ॥ ५ ॥

रक्तवर्ण, रक्तवस्त्र, दोनों स्तनों के मध्य से बहती हुई रक्त धार वाली, त्रिभुवन सारभूत कमल पर स्थित, पराविद्याका जप करती हुई, हजारों सूर्य के समान प्रचण्ड तेज वाली, मुण्डमाल धारण की हुई, विकराल हास्य करने वाली, भैरवपत्नी माता भैरवी, आप ही इस संसार में गतिरूपा हैं। अर्थात् समस्त संसार की प्रवर्तिका हैं ॥ ५ ॥

स्वकर-कलित-करवाल-विखण्डितमात्मशिरोनिजहस्ते
कृत्वा निजगल-विगलित-शोणितपानपरासि विमस्ते ।
रतिरतिनाथे रतिविपरीते नृत्यसि मोहपरास्ते
भावमसम्भवमिच्छामि त्वयि ईश्वरि देवि नमस्ते ॥ ६ ॥

अपने हाथ में धारण की हुई तीक्ष्ण धारवाले कृपाण (तलवार) से अपना शिर काटकर अपने हाथ में धारण की हुई छिन्नमस्ता देवी, अपने कटे हुए गले से बहती हुई रुधिर-धार को पान करती हुई, अत्यन्त मोहवश कामासक्त सुरत संभोगादि एवं विपरीत रति में तत्पर-सी नृत्य करती हुई अर्थात् असम्भव कार्य को भी सम्भव करती हुई आप ईश्वरी देवी, छिन्नमस्ता के लिए नमस्कार है॥६॥

उच्चैर्घोणा कोटरनयना दीना विधवावेशा
करधृतसूर्पा समधिकदर्पा काकध्वजरथवासा ।
रक्तापाङ्गा कलहासङ्गा रूक्षा कुञ्चितकेशा
धूमावति सा प्रभवति भवती प्रतिपद्भीतमहेशा ॥ ७ ॥

उन्नत नासिका, धंसी आँख वाली, दीन, विधवा सदृश, हाथ में सूप धारण की हुई, अत्यन्त अभिमानवाली, कौवे के ध्वजवाले रथ पर विराजमान, रक्त कटाक्ष वाली, सर्वदा कलह में तत्पर, रूक्ष, घुघुराले केश वाली, शंकर से निरन्तर भय-भीत ऐसी धूमावती देवी विचरण करती हैं ॥ ७ ॥

कुण्डलमण्डित-गण्डविराजितमनुपमरूपमपूर्वम्
निर्जितचपले चम्पकमृदुले मनसिजमहिलागर्वम् ।
करकलितासुररसने भीषणमुद्गरमरिबल-खर्वम्
धरसि हरसि ननु वहसि च भक्ते वितरसि कृपया सर्वम् ॥ ८ ॥

कुण्डलों से सुशोभित कपोल, अपूर्व अलौकिक रूपवाली, विद्युत् को भी तिरस्कृत करनेवाली, चम्पक पुष्प के समान सुकोमल, स्त्रियों के गर्वरूप कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाली, शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले भीषण मुद्गर को धारण की हुई, दुष्ट असुरों की जिह्वा को खींचती हुई, अपने भक्तों पर पूर्ण कृपा वितरित करती हुई हे देवि, आप संसार का पालन, पोषण तथा संहार त्रिगुणात्मिका शक्ति रूप से करती हैं ॥ ८ ॥

वाणीसिद्धिविधायिनि दायिनि नियतेर्भगवतिविद्ये
पाशाङ्कुश-खेटक-पटुशानित-खड्गकरे सकलाद्ये ।
शिशुशशिधारिणि दुरितनिवारिणि दुस्तरसंसृतिमध्ये
मातङ्गि त्वं सङ्कटमपहरदनुजदलन आराध्ये ॥ ९ ॥

सिद्धवाणी को कहने वाली, सुन्दर भाग्य निर्माण करने वाली, समस्त विद्यारूपा, समस्त चर, अचर में सर्वप्रथम उत्पन्न होनेवाली, अपने कर-कमलों में पाश, अंकुश, खेटक, पटह एवं तीक्ष्ण खड्ग आदि धारण की हुई, बालचन्द्र से सुशोभित मस्तक वाली, अपार संसार में पापनाशिनी, शत्रुओं को नष्ट करने वाली हे मातङ्गी देवी, आप अपने भक्तों के संकट को दूर करें ॥ ९ ॥

विकच-कमलकुल-कलिकोपरि-हरिदयितालम्बितकेशा
करिकर-कलसोत्थित-सलिलार्द्रित-पूतविसारितवेशा ।
रक्ताम्बरधर-पीनपयोधर-वरतनुमृदु-मृदुहासा
करधृतकमला विमला कमला रूपमहोदधिशेषा ॥ १० ॥

हे लक्ष्मी ! आप अपने केश फैलाये हुए, खिले हुए कमल-समूह की कलियों पर विराजमान हैं। तथा हाथी-द्वारा अपने सूँड़ पर उठाये हुए कलश के जल से सिंचित होने से पवित्र वेश वाली, रक्त वस्त्र धारण की हुई, उन्नत स्तनवाली,

सुन्दर शरीर युक्त, मन्द-मन्द मुसकराती हुई, हाथ में श्वेत कमल धारण की हुई, समुद्र के समस्त सौन्दर्यनिधिरूपा, ऐसी भगवती कमला (लक्ष्मी) मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

दशविधमूर्तिं धरसि सुकीर्ते दुर्गतिनाशिनि दुर्गे
नानामाये स्मरहरजाये क्रीडसि नियतनिसर्गे।
समधिकदीनं मतिगतिहीनं कृपणं करुणापात्रम्
कुरु सति सम्प्रति करुणां मां प्रति मम याचनमतिमात्रम् ॥११॥

इति श्रीमत् १०८ स्वामिश्रीभैरवानन्दगिरिविरचितं
दशमहाविद्यास्तोत्रं समाप्तम्।

विख्यात कीर्ति वाली, भक्तों के भीषण कष्ट को हरण करने वाली, मायामयी, कामदेव को नष्ट करने वाले भगवान् शङ्कर की पत्नीरूपा आप समस्त चराचर जीव के भाग्यविधाता हैं। मैं अधिक दीन, निर्बुद्धि, गतिहीन, कृपण अतएव आपका कृपापात्र हूँ। अतः आप मेरी इस याचना पर कृपा करें। हे दुर्गे, आपने ही दशविध महाविद्या के स्वरूप को धारण किया है ॥ ११ ॥

इस प्रकार 'तत्त्वदीपिका' हिन्दी व्याख्या में
दशमहाविद्यास्तोत्र समाप्त।

गायत्रीशापोद्धारः

ब्रह्मशापविमोचनम्—

विनियोगः—अस्य गायत्रीशापविमोचनमन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीच्छन्दो वरुणो देवता ब्रह्मशापविमोचने विनियोगः।

साधक दाहिने हाथ में जल लेकर 'अस्य…………' से 'विनियोगः' तक पढ़कर भूमि पर जल छोड़े।

मन्त्रः—ॐ यद् ब्रह्मेति ब्रह्मविदो विदुस्तां पश्यन्ति धीराः सुमनसो वा गायत्रि त्वं ब्रह्मशापाद् विमुक्ता भव।

'ॐ यद् ब्रह्मेति' से लेकर 'ब्रह्मशापाद् विमुक्ता भव' यहाँ तक ब्रह्मशापविमोचन का मन्त्र है।

वशिष्ठशापविमोचनम्—

विनियोगः—वशिष्ठशापविमोचनमन्त्रस्य वशिष्ठऋषिर्वशिष्ठो देवता वशिष्ठशापविमोचने विनियोगः।

पुनः 'वशिष्ठशापविमोचनमन्त्रस्य…………' से लेकर 'वशिष्ठशापविमोचने विनियोगः' तक मन्त्र पढ़कर जल छोड़े।

मन्त्रः—ॐ अर्कज्योतिरहं ब्रह्म ब्रह्मज्योतिरहं शिवः।
शिवज्योतिरहं विष्णुर्विष्णुर्ज्योतिः शिवः परः॥
गायत्रि त्वं वशिष्ठशापाद् विमुक्ता भव।

वशिष्ठशाप-विमोचन का मन्त्र है—'ॐ अर्कज्योतिरहं…………' से 'वशिष्ठशापाद् विमुक्ता भव' तक।

विश्वामित्रशापविमोचनम्—

विनियोगः—ॐ विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य विश्वामित्रऋषिराद्या देवता विश्वामित्रशापविमोचने विनियोगः।

उसी प्रकार 'ॐ विश्वामित्र…………' से 'विनियोगः' तक मन्त्र पढ़कर विनियोग-जल छोड़े।

मन्त्रः—ॐ अहो देवि महादेवि दिव्ये सन्ध्ये सरस्वति।
अजरे अमरे चैव ब्रह्मयोनि नमोऽस्तु ते॥
गायत्रि! त्वं विश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव।

इति गायत्रीशापोद्धारः।

पश्चात् 'ॐ अहो देवि…………' से 'विश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव' तक मन्त्र पढ़कर जल छोड़े।

इस प्रकार 'तत्त्वदीपिका' हिन्दी टीका में गायत्री-शापोद्धार समाप्त।

गायत्रीकवचम्

ॐ गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ।
ब्रह्म सन्ध्या तु मे पश्चादुत्तरे तु सरस्वती ॥ १ ॥

पूर्व दिशा में गायत्री, दक्षिण में सावित्री, पश्चिम में ब्रह्मसन्ध्या और उत्तर में सरस्वती हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

पावकी मे दिशं पातु पावकी जलशायिनी ।
यातुधानी दिशं रक्षेद् यातुधानी भयङ्करी ॥ २ ॥
पावमानी दिशं रक्षेत पापानां च विनाशिनी ।
दिशं रौद्री सदा पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ।
एवं दशदिशो रक्षेत् सर्वाङ्गे भुवनेश्वरी ॥ ४ ॥

आग्नेयकोण में वाडवाग्नि, नैऋत्यकोण में यातुधानी, वायव्यकोण में पापोंको नष्ट करनेवाली पावमानी, ईशानकोण में भयंकर रूप धारण करनेवाली रुद्राणी, ऊपर की ओर ब्रह्माणी, नीचे की ओर वैष्णवी तथा सर्वांग में भुवनेश्वरी हमारी सदा रक्षा करें ॥ २–४ ॥

तत्पदं पातु मे पादं जङ्घे मे सवितुः पदम् ।
वरेण्यः कटिदेशं तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥ ५ ॥

'तत्' पद चरण की, 'सवितुः' जँघा की, 'वरेण्यः' कटि प्रदेश की, 'भर्गः' नाभि की, ॥ ५ ॥

देवस्य मे पातु हृदं धीमहीति जलं तथा ।
धियो यो इति मे नेत्रं नःपदं तु ललाटकम् ॥ ६ ॥

'देवस्य' हृदय की, 'धीमहि' जननेन्द्रिय की, 'धियो यः' नेत्र की तथा 'नः' पद हमारे ललाट की रक्षा करें ॥ ५ ॥

एवं पादादि-मूर्द्धान्तं मूर्द्धानं मे प्रचोदयात् ।
इदं तु कवचं पुण्यं हत्याकोटि-विनाशनम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार पैर से मस्तक पर्यन्त 'प्रचोदयात्' मेरी रक्षा करे। यह कवच पुण्यकारी तथा करोड़ों हत्या को नष्ट करने वाला है ॥ ७ ॥

चतुःषष्टिकला विद्या सर्वपापप्रणाशिनी ।
जपारम्भे च गायत्री जपान्ते कवचं पठेत् ॥ ८ ॥

समस्त पापों को नष्ट करने वाली चतुःषष्टि कला विद्यारूपी गायत्री जप के आरम्भ में तथा जप के अन्त में कवच का पाठ करें ॥ ८ ॥

गो–स्त्री–ब्रह्मवधादीनि मित्रद्रोहादिपातकैः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ९ ॥

इति गायत्रीकवचं समाप्तम् ।

इस कवच का पाठ करने वाला साधक गौ, स्त्री, ब्राह्मण वध आदि तथा मित्रद्रोहादि समस्त पापों से मुक्त होता है और अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इस प्रकार पण्डित श्री शिवदत्तमिश्र शास्त्री कृत 'तत्त्वदीपिका' हिन्दी टीका में गायत्रीकवच समाप्त ।

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।